आवरण पृष्ठ चित्र- प्रयाग शुक्ला

जनवरी - मार्च 2026
अंक - 04

वातायनम्

वातायन यूरोप की त्रैमासिक पत्रिका
www.vatayaneurope.com

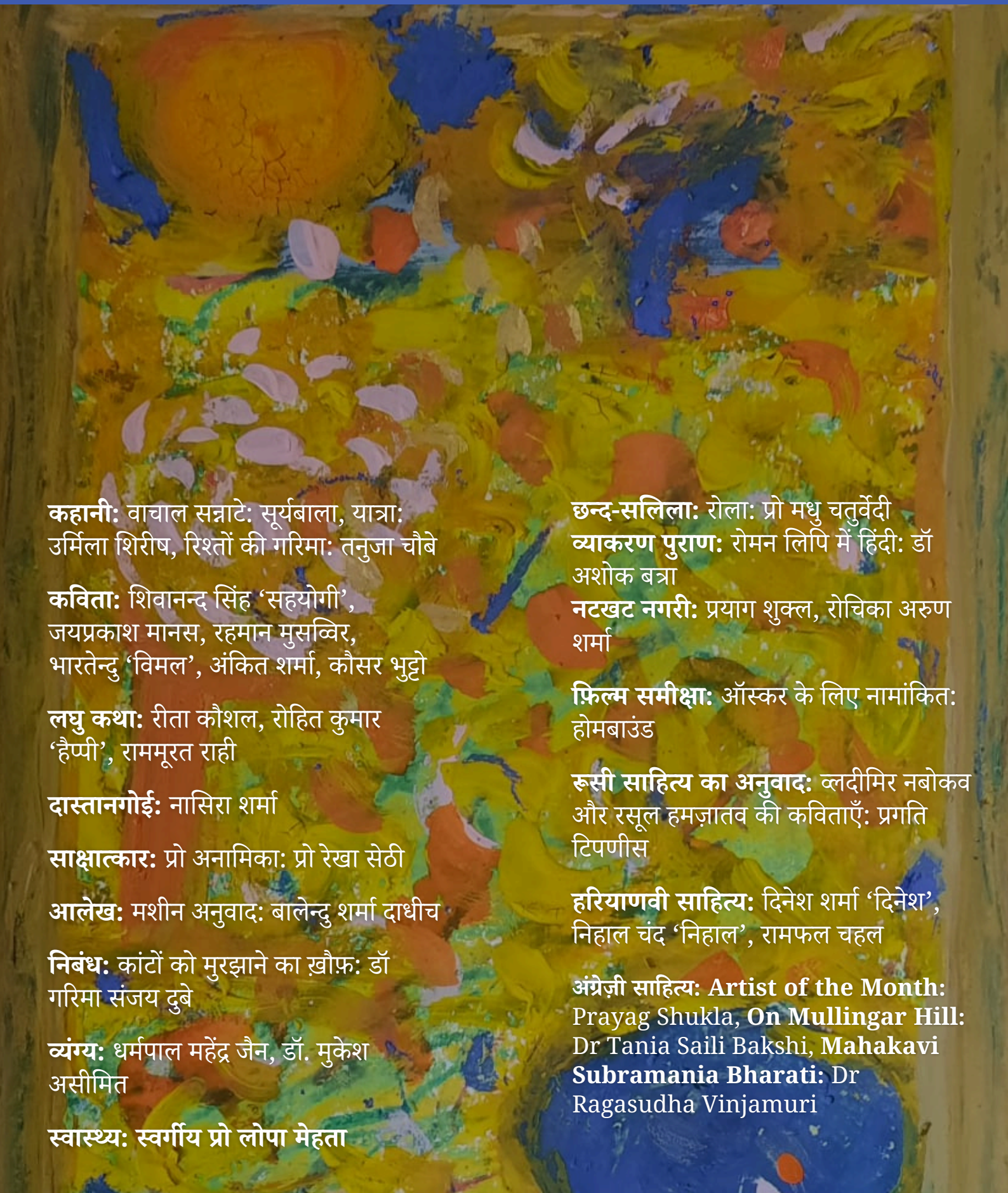

कहानी: वाचाल सन्नाटे: सूर्यबाला, यात्रा: उर्मिला शिरीष, रिश्तों की गरिमा: तनुजा चौबे

कविता: शिवानन्द सिंह 'सहयोगी', जयप्रकाश मानस, रहमान मुसव्विर, भारतेन्दु 'विमल', अंकित शर्मा, कौसर भुट्टो

लघु कथा: रीता कौशल, रोहित कुमार 'हैप्पी', राममूरत राही

दास्तानगोई: नासिरा शर्मा

साक्षात्कार: प्रो अनामिका: प्रो रेखा सेठी

आलेख: मशीन अनुवाद: बालेन्दु शर्मा दाधीच

निबंध: कांटों को मुरझाने का ख़ौफ़: डॉ गरिमा संजय दुबे

व्यंग्य: धर्मपाल महेंद्र जैन, डॉ. मुकेश असीमित

स्वास्थ्य: स्वर्गीय प्रो लोपा मेहता

छन्द-सलिला: रोला: प्रो मधु चतुर्वेदी

व्याकरण पुराण: रोमन लिपि में हिंदी: डॉ अशोक बत्रा

नटखट नगरी: प्रयाग शुक्ल, रोचिका अरुण शर्मा

फ़िल्म समीक्षा: ऑस्कर के लिए नामांकित: होमबाउंड

रूसी साहित्य का अनुवाद: व्लदीमिर नबोकव और रसूल हमज़ातव की कविताएँ: प्रगति टिपणीस

हरियाणवी साहित्य: दिनेश शर्मा 'दिनेश', निहाल चंद 'निहाल', रामफल चहल

अंग्रेज़ी साहित्य: Artist of the Month: Prayag Shukla, **On Mullingar Hill:** Dr Tania Saili Bakshi, **Mahakavi Subramania Bharati:** Dr Ragasudha Vinjamuri

वातायनम्

वातायनम्- वसुधैव कुटुम्बकम्- वैश्विक साहित्यिक परिवार
(A Global Literary Family)

संरक्षक
डॉ. पद्मेश गुप्त

प्रमुख संपादक
दिव्या माथुर

प्रबंध संपादक
अर्पणा संत सिंह

संपादक - भाषा व अभिव्यक्ति
प्रो. राजेश कुमार

संपादन सहयोग
प्रो. रेखा सेठी
डॉ. वंदना मुकेश
आराधना झा श्रीवास्तव
(आंचलिक)
अजेय जुगरान (अंग्रेज़ी)
ऋचा जैन (विश्व साहित्य)

क्रिएटिव मार्केटिंग मैनेजर
अंतरीपा ठाकुर मुखर्जी

वेब/तकनीकी विशेषज्ञ
शिवि श्रीवास्तव

कोषाध्यक्ष
एडवर्ड क्रास्क

सलाहकार
मीरा मिश्रा कौशिक, ओ.बी.ई.
डॉ. निखिल कौशिक
तितिक्षा दंड शाह

भारत में प्रतिनिधि
प्रो. मधु चतुर्वेदी

युद्ध, संघर्ष और महामारी के दौर में साहित्यिक और सांस्कृतिक सौहार्द के सेतु के रूप में - वैश्विक साहित्यिक परिदृश्य में नई प्रासंगिकता के साथ साहित्य की आत्मा सभी को एक सूत्र में बाँध देती है, जहाँ भाषा, भूगोल और सांस्कृतिक सीमाएँ गौण हो जाती हैं। साहित्य, कला और दर्शन में शांति, सहिष्णुता और विविधता के विचारों का अन्वेषण, जिनमें साझा मानवता का संवाद है, तथा करुणा, संघर्ष, प्रेम, विस्थापन, स्मृति, पहचान और बेहतर भविष्य की आकांक्षा है। इस संवाद में हर लेखक, हर कलाकार, हर पाठक इस वैश्विक परिवार का अभिन्न अंग है।

वातायनम् का लक्ष्य है, अतीत की प्रेरणादायक रचनात्मक धरोहर, वर्तमान की आधुनिकता और नवीन प्रयोगधर्मिता की अनुभूतियों की सम्मिलित अभिव्यक्ति - जो भविष्य के लिए धरोहर हो, सेतु बने। हमारा प्रयास रहेगा कि वातायनम् केवल पारंपरिक साहित्य तक सीमित न रहे, बल्कि वह नए लेखन और नई प्रौद्योगिकी के साथ कदम से कदम मिलाकर विश्व की अन्य भाषाओं और साहित्य के साथ वैश्विक मंच स्थापित कर सके।

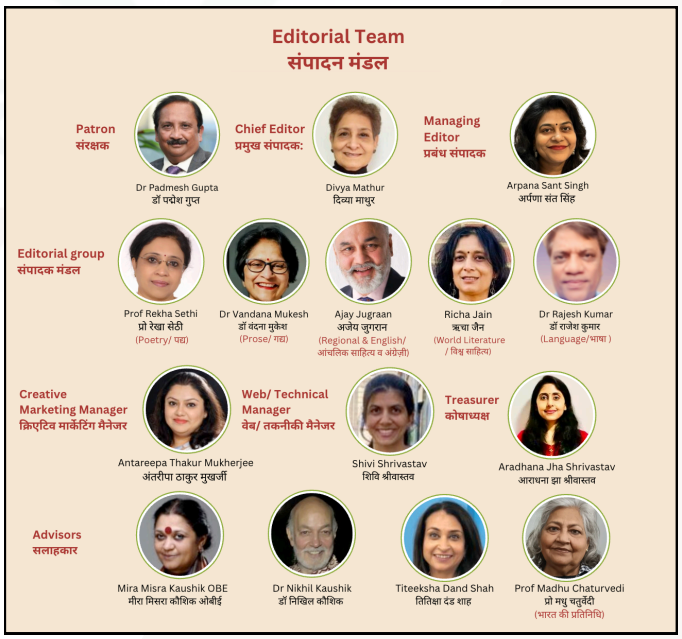

वेबसाइट: www.vatayaneurope.com, **यू-ट्यूब:** www.youtube.com/@vatayanuk
ई-मेल: vatayaneurope@gmail.com

वातायनम् में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने है,उससे वातायनम् टीम का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
पत्रिका में प्रकाशित तस्वीरें गूगल, पिनटेरेस्ट और अन्य अंतरजाल संसाधनों से साभार ली गई हैं।

शताब्दी यात्रा पूर्ण

हिंदी के महान साहित्यकार

प्रो. रामदरश मिश्र (पद्मश्री)

15 अगस्त 1924 - 31 अक्टूबर 2025

सादर नमन

डॉ. रामदरश मिश्र हिंदी साहित्य के एक बहुमुखी और प्रतिष्ठित साहित्यकार थे। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना, संस्मरण, डायरी और यात्रा-वृत्तांत जैसी लगभग सभी साहित्यिक विधाओं में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वे मुख्य रूप से कवि और कथाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं, जिन्हें प्रेमचंद परंपरा का सशक्त संवाहक माना जाता है। उनकी रचनाओं में ग्रामीण सादगी, लोकभाषा की मिठास और जीवन की करुणा का अनूठा संगम देखने को मिलता है। शिक्षा के बाद, उन्होंने गुजरात और दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया। उनकी प्रमुख कृतियों में उपन्यास 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', 'अपने लोग'; कहानी संग्रह 'खाली घर'; और काव्य संग्रह 'पक गई है धूप', 'कंधे पर सूरज', 'आम के पत्ते', और 'मैं तो यहाँ हूँ' शामिल हैं। हिंदी साहित्य में उनके अमूल्य योगदान के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार (2015), व्यास सम्मान (2011), और सरस्वती सम्मान (2021) सहित अनेक विशिष्ट सम्मानों से अलंकृत किया गया है।

अनुक्रम

संपादकीय 5

कहानी:

वाचाल सन्नाटे: सूर्यबाला 6
यात्रा: उर्मिला शिरीष 11
रिश्तों की गरिमा: तनुजा चौबे 18

कविता:

नहा रहे नवगीत: शिवानन्द सिंह 'सहयोगी' 22
ओढ़ी हुई उदासी का लोकगीत: जयप्रकाश मानस 23
ढो रहीं हैं सभ्यताएं: अंकित शर्मा 'इषुप्रिय' 24

ग़ज़ल:

चींटियों के पर निकल आए: प्रो रहमान मुसव्विर 25
प्यार की महफ़िल: भारतेन्दु 'विमल' 25
ग़ज़ल दर ग़ज़ल: कौसर भुट्टो 26

लघु कथा:

बड़े घर की बहू: रीता कौशल 27
हाऊ आर यू : रोहित कुमार 'हैप्पी' 28
उपवास, गिरगिट: राममूरत राही 29

क़िस्सागोई:

एशिया महाद्वीप में क़िस्सागोई की
दास्तानगोई: नासिरा शर्मा 30

आलेख:

अपूर्ण होकर भी महत्वपूर्ण है मशीन
अनुवाद: बालेन्दु शर्मा दाधीच 33

निबंध:

क्योंकि कांटों को मुरझाने का ख़ौफ़ नहीं
होता: डॉ गरिमा संजय दुबे 36

व्यंग्य:

साहित्य में प्रसिद्धि का वास्तुशास्त्र: धर्मपाल
महेंद्र जैन 39
डाँडिया का असली रंग: डॉ. मुकेश असीमित 42

स्थायी स्तम्भ:

साक्षात्कार: प्रो अनामिका: प्रो रेखा सेठी 47
छन्द-सलिला: रोला: प्रो मधु चतुर्वेदी 52
व्याकरण पुराण: रोमन लिपि में
हिंदी: डॉ अशोक बत्रा 53
नटखट नगरी:
मोर, पीली नीली न्यारी तितली, झूला
झूले: प्रयाग शुक्ल 54
नया वर्ष है, गुस्सा हो पेन्सिल जी बैठी: रोचिका
अरुण शर्मा 55
स्वास्थ्य: देहावसान: स्वर्गीय प्रो लोपा मेहता 56
फ़िल्म समीक्षा: ऑस्कर के लिए
नामांकित: होमबाउंड 58

अंतरराष्ट्रीय साहित्य:

रूसी कहानी: प्रतीक और संकेत
अनुवाद: प्रगति टिपणीस 59
रूसी कवि रसूल हमज़ातव की
कविताएँ: अनुवादक: प्रगति टिप्पणीस 64

आंचलिक:

हरियाणवी साहित्य: समृद्ध साहित्य की धरती हरियाणा
दिनेश शर्मा 'दिनेश' 68
भजन: लोककवि निहाल चंद 'निहाल' 70
कविता: कित टोहूं - डॉ. रामफल चहल 71
आलेख: लंदन अर सिडनी मै छारया धोती
कुड़ता दामण: दिनेश शर्मा 'दिनेश' 72

अंग्रेज़ी साहित्य:

Artist of the Month: Prayag Shukla 74
Book Review: On Mullingar Hill: Dr Tania
Saili Bakshi 75
A Tribute to Mahakavi Subramania
Bharati: Dr Ragasudha Vinjamuri 77

आपने लिखा है... 80

संपादकीय

प्रिय पाठको,

वातायनम् का यह चौथा अंक हिंदी के वरिष्ठतम साहित्यकार और हिंदी साहित्य के युगपुरुष, संवेदनशील कथाकार, कवि, आलोचक और दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर रहे - आदरणीय प्रो. रामदरश मिश्र जी को समर्पित है, जो अब हमारे बीच नहीं रहे। मैंने सपने में भी नहीं सोचा था कि इतनी जल्दी उनके नाम के पहले स्वर्गीय लगाना पड़ जाएगा – तेरे मन कछु और है, विधना के कछु और - हिंदी साहित्य ने अपने एक अनमोल रत्न को खो दिया। ईश्वर से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करे और उनके परिवार और हम सबको यह अपार दु:ख सहने की शक्ति दे।

हमारा सौभाग्य है कि इस अंक का सुंदर आवरण-चित्र सुप्रसिद्ध कवि, कला-समीक्षक और लेखक, प्रयाग शुक्ल जी ने बनाया है। जैसा कि आपने देखा ही होगा कि पूर्व के तीन अंकों के आवरण चित्र लीलाधर मँडलोई जी, ब्रिटिश आर्टिस्ट जेरू रॉय और असगर वजाहत द्वारा चित्रित थे। हमारा प्रयत्न रहता है कि पाठकों के लिए हम इन जाने-माने चित्रकारों के लेखकीय पक्ष को भी उजागर करें, इसलिए 'माह के आवरण चित्रकार' के रूप में उनका परिचय करवाने के अतिरिक्त हम उनकी एक या दो रचनाएं भी संदर्भित अंक में प्रकाशित करते हैं।

सभी स्तम्भ उपस्थित हैं, विशेषतः प्रो अनामिका जी से प्रो रेखा सेठी का साक्षात्कार, सूर्यबाला जी की असाधारण कहानी, वाचाल सन्नाटे, बालेन्दु शर्मा दाधीच शर्मा का आलेख: अपूर्ण होकर भी महत्वपूर्ण है मशीन अनुवाद, और अंतरराष्ट्रीय साहित्य के अंतर्गत प्रगति टिपणीस द्वारा रूसी कहानी और कविताओं का हिंदी अनुवाद, शिवानन्द सिंह 'सहयोगी', जयप्रकाश मानस, भारतेन्दु 'विमल' और कौसर भुट्टो जैसे प्रतिष्ठित कवियों की कविताएं और ग़ज़लें, 'आँचलिक साहित्य' के तहत हरियाणवी के सर्वश्रेष्ठ लेखक दिनेश शर्मा की रचनाएं।

हम अपने सभी प्रतिभागी लेखकों का धन्यवाद करते हैं जिन्होंने हमें विविध विषयों पर उत्कृष्ट सामग्री उपलब्ध करवाई। पाठकों की प्रतिक्रियाओं का स्वागत है।

शुभकामनाओं सहित और सस्नेह,

(दिव्या माथुर)

वाचाल सन्नाटे

सूर्यबाला

व्यास पुरस्कार जैसे प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित विख्यात लेखिका, कई भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनूदित, जिनके अनेक टीवी धारावाहिक प्रसारित हो चुके हैं।

suryabala.lal@gmail.com

मैं उन्हें बहुत पहले से जानती हूँ। मेरे देखते-देखते कहानी बन गई वे। कुल साढ़े छह सात मिनट की कहानी (साठ सत्तर साल लंबी जिंदगी की)। हकीकतों को कहानी बनते, कोई ज़लज़ले तूफ़ान थोड़ी आया करते हैं। बस जैसे-जैसे शक्कर-खोरे सच, झुठलाते जाते हैं; कहानियां बनती जाती हैं।

सामने सोफ़े पर बैठी हैं वे! एक तरफ़ उनका स्ट्रोलर और शोल्डर बैग रखा है। हल्के बादामी प्रिंट की साड़ी फब रही है, उनकी गेंहुई रंगत पर। सफ़ेद बालों के साथ एक शालीन सामंजस्य बुनती हुई।

चश्मा भी गहरे रंग के बारीक फ्रेम वाला (टूटी कमानी वाला नहीं...), हाथ में घड़ी और पैरों में बाटा-सोल की चप्पलें। और इस सारे कुछ के सेंटर-पॉइंट की तरह, गर्दन के नीचे, पतली चेन में झूलता पति के नाम वाला लॉकेट।

हम थोड़े अंतराल पर कुछ न कुछ बोल ले रहे हैं। कुछ भी कहना या पूछना... जिससे सन्नाटे का अंदेशा न रहे। लेकिन फिर भी सन्नाटा है। काफ़ी सन्नाटा। वे खुद भी बोलने की कोशिश कर रही हैं लेकिन उनकी आवाज़ आधी से ज्यादा गुम जा रही है... और सन्नाटा जैसे इसी की ताक में हो। मौका पाते ही चारों तरफ़ परस जा रहा है। एक बेहद वाचाल सन्नाटा। सबके ऊपर, सबके बावजूद। और तब उनकी आवाज़ और ज़्यादा गुमी सी लगने लगती है। थकी भी तो बहुत हैं!

उनकी ट्रेन सुबह चार बजे ही पहुंच गई थी। मेरे पति पहुंचे तो वे उन्हें इसी तरह प्लेटफ़ॉर्म की एक बेंच पर बैठी हुई मिली थीं।

'ट्रेन में भी काफ़ी पहले से जगी रही होंगी आप! स्टेशन आने वाला होता है तो कहाँ सो पाते हैं... और प्लेटफ़ॉर्म पर भी उतनी देर...'

'न... ही... सफ़र में निकलो तो ये सब थोड़े बहुत...' थकान के बावजूद, वे मुस्कराने और स्वस्थ दिखने की पूरी कोशिश कर रही हैं।

सोफ़े पर बैठे-बैठे नीचे रखे शोल्डर-बैग की तरफ, उन्हें हाथ बढ़ाते देख, मैं जल्दी से पूछती हूं - क्या चाहिए?... मैं निकाल दूं?

'यूं ही... देखना था, छोटी टॉवेल... इस्तेमाल के बाद रख दी है न!'

मैंने जल्दी से बैग खोलकर ऊपर से ही देखा है... 'रखी है न! ये क्या रही... आप भला भूल सकती हैं...,' उनके चेहरे पर हल्की रौनक आई।

मैंने फिर सन्नाटा तोड़ा, 'ये कह रहे थे, स्टेशन पर बहुत चलना पड़ा आपको,' चलते-चलते ज़रूर थक गई

होंगी।'

'न, मैंने दवा खा ली थी प्लेटफ़ॉर्म पर ही... बटुए में ही रखे रहती हूं।'

मेरे पति टोस्टर में ब्रेड डालते हुए कहते हैं, आ... प भी कुछ खा लेतीं तो अच्छा था।'

उन्होंने दूध ब्रेड लेकर दुबारा गोलियां खा लीं... फिर थोड़ा इंतजार कर आहिस्ते से पूछा है, 'कब तक पहुंचा पाएंगे मुझे।'

'बस, ये नाश्ता खत्म कर लें,'
वे जैसे अपने आप से कह रही हैं, 'बहू ऑफिस चली जाती है, साढ़े दस तक...'

'रीना तो वैसे भी चली गई होगी, आपके पहुंचने तक। सुबह के समय इस पूरे रास्ते पर ट्रैफ़िक पीक पर रहता है...'

'लेकिन आप तो अभी रहेंगी ही - वहां, उन लोगों के पास...''
उन्होंने ढेर सारे अधूरे जवाब बुदबुदाए हैं, जैसे - 'हां', 'और क्या', 'वो तो है ही', 'तो कितने दिन रहेंगी...', देखो, कुछ दिन तो रहूंगी ही... जितने दिन भी... अभी कुछ ठीक नहीं...,'

मुझे वे एक ऐसी शिला लग रही थीं जिसे चारों तरफ से लहरें झिंझोड़ डाल रही हों और वे चूर-चूर, ध्वस्त होता अपना वजूद जी जान से बचाने में लगी हों।

चाय की आखिरी घूंट लेते-लेते मेरे पति ने यकबयक पूछा है, 'रीना तो ऑफ़िस चली गई होगी - रौनक और शौनक भी तो...जब आप पहुंचेगी तो घर में कोई होगा न...'
'हां... वो काम करने वाली लड़की कुंदा है न... वो होगी...'

हमें बरबस एक कुटिल हंसी छूटी है... तो, कुंदा से मिलने की इतनी बेसब्री। लेकिन मेरी हंसी बर्फ़ सी जम गई है। उनके अंदर चलते मौन-संवादों का शोर बढ़ गया है, जैसे किसी किले में घमासान मची हो... वे दरवाजा पीट-पीटकर बाहर आना चाहते हैं लेकिन उन्हें सख्त मनाही है। दरवाजे पर 'उनका' सख्त, निःशब्द पहरा जो है।

उम्र के इस मुकाम पर, कोई आहट उनके अंदर की कहानी कह जाए यह उन्हें मंजूर नहीं। इसलिए साइलेंट स्ट्रोक की तरह संवाद अंदर चल रहे हैं - घर में कुंदा के साथ-साथ - उनका बेटा शौनक माँ पर गया है लेकिन रौनक बिलकुल बेटे पर... वैसा ही जगमगाता चेहरा... बोलती आंखें... देवदारु काया... शाम को लौटेगा रौनक... तस्वीर से बाहर आएगा बेटा... वरना बहू ने फ़ोन पर कहा था, 'हम सब ठीक हैं, और यहां आपको लुकआफ्टर करने वाला भी तो कोई नहीं...'

'ज़रूरत नहीं,' उन्होंने धीमी आज़जी से कहा था, 'गोलियां रहती हैं मेरे पास, अब...' यह कहते हुए, पिछली बार उमड़े अपने साइटिका के दर्द को सोचकर संकुचित हुई थीं वे।

'फिर भी... शौनक का फ़ाइनल इयर है और.... रौनक की टाइमिंग भी बड़ी 'वियर्ड' है...

‘कोई बात नहीं, फिर भी कुछ दिनों ही रह लूंगी, बच्चों के और... तुम्हारे पास...’

‘मैं भी तो सुबह से शाम तक ऑफ़िस ही रहती हूं... फिर... अकेली ही रहेंगी आप...’

‘यहां... (इस बेटे के पास) भी अकेली ही हूं।’

‘तो फिर... आने का फ़ायदा!’

फ़ायदा!... अचानक अंदर का शोर बढ़ गया है। लहरें भी एक साथ, शिला को पीटने पर आमादा है... ‘फ़ायदा’ चिल्लाती हुई... हां, फ़ायदे हैं न, बहुत सारे... जैसे यही कि लोगों का यह भ्रम बना रहे कि उनकी दुनिया अभी भी अपनी जगह दुरुस्त है। जीवन में सारा दुर्भाग्य ईश्वरीय आघातों का ही है, शेष सब पूरी तरह सामान्य। इस पकी आयु में वे पूरी तरह बच्चों के सुरक्षा-वलय में अवस्थित हैं। सुखी, सुरक्षित और सम्मानित, वे बच्चों के पास आ जा रही हैं... यहां से वहां... वहां से यहां... कहीं कोई उपेक्षा, अवहेलना या तिरस्कार नहीं है... सब जगह सम्मान और सुव्यवस्था है, समस्या कोई नहीं...

वो तो, उनकी बहू रीना का फ्लैट दूर पड़ता है, रौनक, शौनक की टाइमिंग काफ़ी ‘वियर्ड’ है... और हमारा घर स्टेशन के पास है... इसलिए ‘उन लोगों’ को स्टेशन बुलाना ठीक नहीं समझा उन्होंने... बल्कि उन्हें खुद ही स्टेशन आने से रोक दिया... और मुझसे फ़ोन करके पूछ लिया कि क्या मेरे पति विमलेंदु जी उन्हें स्टेशन से अपने घर ला सकते हैं?

(ट्रेन सुबह चार बजे ही पहुंचती है, लेकिन इसकी कोई बात नहीं... यह ट्रेन ज्यादातर लेट रहती है। नहीं भी रही तो वे मुसाफ़िरों की मदद से उतर कर किसी बेंच पर बैठ जाएँगी। सुबह का समय भी कितना अच्छा रहता है। वे खुले में बैठी रहेंगी... विमलेंदु जी को स्टेशन पहुंचने के लिए जल्दबाज़ी करने की ज़रा भी ज़रूरत नहीं। वे इंतज़ार कर लेंगी।... एकाध घंटे भी।

इसी बहाने मेरे पास भी रह लेंगी दो-ढाई घंटे। बाद में विमलेंदु जी जब ऑफ़िस जाने लगें, उन्हें भी साथ लेते जाएँ... उनके ऑफ़िस से शायद दूर नहीं है ‘उन लोगों’ का फ्लैट... बहू चली गई होगी तो कुंदा होगी ही घर में...

‘अरे बिलकुल-बिलकुल... हमारा खुद भी तो कितना मन है आपको देखने का। कितने सालों पहले की मिली हूं आपसे-जब कंपनी के परचेज़ यूनिट की लांचिंग हुई थी... जब आपने सुनहले ज़री बॉर्डर की बैंजनी साड़ी पहनी थीं।... जब हेल्थ मिनिस्टर ने काले ग्रेनाइट पर लगी गुलाबी डोरी खींची थी...’

‘और भी कि जब सीनियर साइंटिस्टों की सेमिनार में डी.के. आपको भी मनाली ले गए थे और उन्हें मिला फूलों का गुच्छा सगर्व, सस्मित, उन्होंने आपको थमा दिया था। पूरे हाल में ज़ोरदार तालियां बजी थीं... खचाखच फ़ोटो खिंचे थे। तब का मैंने आपको देखा है... तब ये बच्चे छोटे थे, या नहीं थे... तब सिर्फ़ आप और डी.के. थे... बैंजनी साड़ी और फूलों के गुच्छे के साथ।‘

‘विमलेंदु जी के ऑफ़िस से ज़्यादा दूर नहीं है न!... उन्हें परेशानी तो नहीं होगी?’

(एक क्रूर सच, हवा में उड़ेगा, ‘और हुई तो!’ का चांटा मारता गुज़र जाता है।)

‘असल में इसी से उन लोगों को स्टेशन आने के लिए मना कर दिया था कि जब विमलेंदु जी के ऑफ़िस के पास ही है तो बेकार में उन्हें...,’

‘और क्या... अरे लीजिए...,’ मैं मुस्तैदी से आगे बढ़कर उनकी किलेबंदी में मदद का हाथ बढ़ाती हूं, ‘कुल चार छह किलोमीटर ही तो है इनके ऑफ़िस से उन लोगों का फ्लैट... आज बस पौनेक घंटे जल्दी निकल लेंगे तो टाइम से ऑफ़िस पहुंच जाएंगे... कोई परेशानी नहीं,’

उनके झंवाए चेहरे ने जैसे किसी उजाले का आभास पाया है।

‘और फिर, आप यह क्यों नहीं सोचतीं कि इस बहाने आप हमारे पास भी कुछ घंटों को आ गईं...’
‘हां यही तो...,’ उनकी थकी आंखें मेरा शुकराना अदा कर रही है।’

मैंने दुबारा उन्हें, उनके दलदल से निकालकर, बाहर समतल, सूखी जमीन पर खड़ी करने की कोशिश की है...
‘इतनी लंबी यात्रा के बाद भी एकदम फ्रेश दिखाई दे रही हैं आप...’

वे हंसी सी, ‘अपनी केयर लेनी होती है न इस उम्र में... जिससे दूसरे को परेशानी न हो...,’

मैंने उनकी जिजीविषा की टिमटिम लौ को लक्ष्य कर एक और दाद दी है, ‘तभी तो एक अकेले, इतना लंबा सफ़र तय कर पाई हैं आप...,’

उनकी झुकी आंखें उठी हैं... जैसे किसी मरणासन्न परिंदे ने पंख फड़फड़ाकर, बचाने वाले के प्रति आभार व्यक्त किया हो।

‘जी चलिए...,’ मेरे पति ब्रीफकेस लिए तैयार खड़े थे अब।

उन्होंने उठने से पहले फिर शोल्डर बैग की तरह हाथ बढ़ाया है, ‘मैं देखे देती हूं न... बताइए...’
‘कुछ नहीं... बस, देखना था, मैंने... पानी की बोतल भी रखी है न...’
‘हां-हां... ये क्या ऊपर से ही खड़ी बोतल दीख रही है।’

‘हां, याद तो था कि... ढक्कन लगाकर रखी है... फिर भी...,’
उठते हुए उन्होंने फिर से खुद ही स्ट्रोलर खींचकर ले चलने का एक हास्यास्पद उपक्रम किया लेकिन मेरे पति ने तत्परता से स्ट्रोलर थाम, उनका शोल्डर बैग कंधे पर लटका लिया और मुझे उनका हाथ पकड़ कार तक ले आने का संकेत कर आगे बढ़ लिए।

कार तक पहुंचते-पहुंचते अचानक मेरे पति ने महसूस किया कि कमर के आस-पास उनकी शर्ट और पैंट बुरी तरह गीले हो गए हैं। बैग ठीक उनकी कमर पर ही लटका था। हमने जल्दी-जल्दी उतारकर देखा तो बोतल का पानी चारों तरफ फैलकर बैग के बाहर रिस रहा था...

अब तक उन्हें सब समझ में आ गया था। वे हतप्रभ विस्फारित आंखों से मुझे गीली, सूखी चीजें अलगाते और बैग से पानी उलीचते देख रही थी। पति को, छोटी टॉवेल से जल्दी-जल्दी अपनी शर्ट पैंट पोंछते तथा

बोतल का बचा पानी फेंकते भी। यद्यपि यह करते हुए भी हम दोनों अपने-अपने संवादों की बेहतरीन अदायगी किए जा रहे थे... जैसे- अरे पैंट-शर्ट का क्या है... अभी दम के दम ऑफ़िस पहुंचने तक सूखे जाते हैं... या फिर... आजकल पानी की बोतलें इतनी बेकार बन ही रही हैं कि कितनी ही सावधानी से बंद करो, ढक्कन की चूड़ियां ठीक बैठती ही नहीं...

पता नहीं, पूरा दृश्य निरीह ज़्यादा था या हास्यास्पद... लेकिन मैंने आंखों की कोरों से भांपा, वे वापस उसी शिला में तब्दील होती जा रही थीं जिसके लिए, चारों तरफ से आती लहरों के थपेड़ों से अपने आप को बचाए रखना मुश्किल होता जा रहा हो - जैसे अस्तित्व बचाने की इच्छा और शक्ति भी अब लगभग निःशेष हो रहे हों...

तभी मेरे पति अचानक उनसे पूछ बैठे, ये खाली बोतल... फेंक दी जाए या रखनी है... आप कहें तो रख लूं या फिर...,'

'अरे नहीं,' उन्होंने भरपूर राहत और शक्ति बटोरकर कहा, 'फेंक दीजिए, बिलकुल अभी... आप फेंक दीजिए...,'

फिर वे कार में बैठीं और कार चल दी। अंतिम बार, कार में बैठी उनके चेहरे की ओर देखकर मुझे लगा जैसे एक बार और अपना वजूद, टुकड़े-टुकड़े होने से बचा ले जाने में कामयाब हो गई हों... कम से कम खिड़की से झांकता उनका चेहरा यही बता रहा था।

◇.....◇

यात्रा

उर्मिला शिरीष
तनूजा कॉलेज- भोपाल में प्रोफ़ेसर, पुरस्कृत लेखिका।
urmilashirish@hotmail.com

माँ, तुम बीमार नहीं हो। नहीं हो। मैंने कह दिया ना। अगर बीमार हो तो बताओ क्या बीमारी है...? इतनी जाँचें करवाई, कोई बीमारी निकली! तुम्हारे चौड़े चाँद जैसे माथे पर बीमारी की एक रेखा तक नहीं है। तुम्हारे नरम हाथ गरम हैं। तुम्हारी जादुई आँखों में अब भी चमक है। तुम्हारे सुनहरे बाल घुँघराली लटों के बीच अभी भी लहरा रहे हैं। तुम्हारा फिगर अब भी आकर्षक और चुस्त-दुरुस्त है। डॉक्टरी भाषा में कहूँ तो तुम एकदम ठीक हो, एकदम निरोग!

क्या कहा... मानसिक बीमारी? डिप्रेशन की शिकार हो। ओह यह भी किसने कहा और क्यों! क्योंकि तुम्हें ऐसा लगता है! मुझे लगता है तुम्हारे भीतर से जीवन का स्वाद चला गया है। तुमने सारे संसार को रसहीन मान लिया है। तुमने प्रेम की जगह घृणा और अविश्वास को अपने भीतर पाल लिया है। तुमने सारे लोगों को अपनी ज़िन्दगी से निकाल दिया है। तुम सिर्फ़ और सिर्फ़ अपनी नज़रों से दुनिया को देखती हो। दुनिया तुम्हें किस नज़र से देखती है, कभी सोचा? नहीं ना।

तुम स्वयं परेशानी में रहती हो और हमें भी रखती हो। यह समय हमारे कैरियर बनाने का है, ना कि फालतू बातों को 'डिस्कस' करने का। प्लीज माँ, समझने की कोशिश करो। तुम नादान बच्ची नहीं हो!

मुझे लगता है तुमने अपने चारों ओर एक घेरा बना रखा है। तुम अपनी कल्पनाओं को अपने विचारों में जन्म देती हो और तुम्हें लगता है कि वह वास्तव में हो रहा है। अच्छा रोना बंद करो। तुम्हारा रोना मुझसे बर्दाश्त नहीं होता। रोना तुम्हारी फितरत में नहीं था। तुम तो हमेशा हँसती रहती थीं। हर परिस्थिति में, हर मौसम में। तुम्हारी हँसी की सब दाद दिया करते थे। तुम्हारी हँसी ने एक संगीत का वाद्ययंत्र बना लिया था... जिसके तार छेड़ो और वह सनसना उठती थी... क्या कोई वाद्ययंत्र सनसनाता है... मैं अभी एप्रोप्रियेट शब्द नहीं तलाश पा रही हूँ, पर मेरे कहने का आशय यही है। चिड़ियाँ चहकना भूल सकती थीं, पर तुम हँसना नहीं भूलती थीं। नदी ठहर सकती थी पर तुम्हारी हँसी की धार नहीं। फिर यह सब कैसे हो गया कि इधर पतझड़ आया और उधर तुम्हारी हँसी चली गई। पतझड़ का तो पता चलता है... पत्ता-पत्ता... पीला होकर गिरने लगता है, वृक्षों की छाल सूखकर झरने लगती है। हवाओं में पत्तों की, सूखे पत्तों के चटकने की... उड़ने की आवाज़ आने लगती है, मगर... तुम्हारी हँसी की खनक कब डूब गई हमें पता ही न चला। हम सब कब इतने दूर हो गए। हमारी दुनिया, हमारे सपने, हमारे रास्ते कब और क्यों दूसरी दिशाओं में चले गए। क्या यह हमारे जीवन का रहस्य है या अंधकार या अजनबी होते जाने की शुरुआत!

अच्छा रोना बंद करो। प्लीज... माँ! आज मुझे तुम्हें समझाना और सँभालना पड़ रहा है, तुम तो मुझे सँभाला करती थीं, सबसे अलग रखती थीं। मेरे रोने पर तुम सबसे ज़्यादा चिढ़ा करती थीं। क्योंकि तुम्हें रोने से सख्त नफरत थी। किसी के भी आँसू देखकर तुम हैरान होती थीं, लेकिन... आज... अब... क्यों बहते हैं तुम्हारे आँसू। कोई यकीन करेगा कि तुम लगातार रोती हो, भीतर-बाहर रोती हो। सुबह-शाम रोती हो। सोते-जागते रोती हो... सबके बीच और अकेले में रोती हो। इससे अच्छी तो तुम्हारी सास यानी मेरी दादी थी, जो अपना सारा गुबार-गुस्सा, दर्द लड़-भिड़कर निकाल लेती थीं। अपनी बात मनवाने के लिए

कितने स्वाँग कर लिया करती थीं। उनके आगे-पीछे सारा कुनबा घूमता था और दादाजी उनके नाम की माला जपते-जपते थकते नहीं थे। तुमने उनसे कुछ भी नहीं सीखा कि एक मजबूत औरत आँसुओं से नहीं आग से बनती है। वो आग नहीं जो बाहर दिखती है... अन्दर की आग! एनर्जी... ताकत। सेल्फ़ कॉन्फ़िडेन्स। या इससे भी परे कुछ और!

ओह... मैं ज्यादा बोल रही हूँ। चुप हो जाती हूँ!

चलो अब तुम्हारी बात सुनती हूँ। बताओ क्या बात है? किसने क्या कह दिया? किसकी बात से तुम आहत हुई हो? कौन तुम्हारा अपमान करके चला गया...? क्या तुम जीवन भर मान-अपमान के बाँस पर चलती रहोगी? कब उबरोगी इन क्षुद बातों के प्रभाव से?

अकेलापन। क्या बचकानी बात करती हो?

क्यों तुम्हें हमेशा किसी न किसी मर्द की ज़रूरत होती है? कभी पिता की, कभी भाई की और अब इस आदमी की, यह तथाकथित गुरु... जिसकी दो-दो बीवियाँ हैं... बच्चे हैं, वह तुम्हें आध्यात्मिक गुरु लगता है, जो अपने ढोंग को सच साबित करने में लगा रहता है, जो अपनी ही औकात नहीं जानता है, जिसे पुलिस और नेताओं की ज़रूरत पड़ती है, वह ईश्वर को देखने-दिखाने की बात करता है! वह जैसा चाहता है तुम्हें नचाता रहता है... उसने तुम्हारी सोच, तुम्हारी पर्सनेलिटी बदल दी है!... तुमने उसके पीछे पूरे खानदान को दुश्मन बना लिया था और मुझे, अपनी बेटी तक को घर से निकाल दिया था। अच्छा माँ, बताओ जिनके पिता, भाई, बेटा या ऐसे गुरु नहीं होते, क्या वे ज़िन्दा नहीं रहतीं? मानती हूँ माँ कि तुम्हें अपने जीवन में कम्पलीट परफेक्ट पुरुष नहीं मिला, जिसकी तलाश में तुम भटकती रही हो। यह तुम्हारे जीवन की यात्रा नहीं यातना है... यह सहारा नहीं, कमजोरी है। यह खोज नहीं, शून्य में दौड़ने की थकान है।

मैं सिखा रही हूँ? तुम्हें ऐसा क्यों लगता है!

बस तुम्हारे मन को टटोल रही हूँ... बदलो अपने मन को, अपने विचारों को... भरो अपने अधूरेपन को!

तुमने अपने आपको देखा ही कब? समझा ही कब? तुम तो दूसरों में अपने को ढूँढ़ती रहती हो! कोई तुममें खुद को ढूँढ़े, ऐसी स्थिति पैदा की? नहीं ना!

मानती हूँ कि तुम सबसे अलग हो। सबसे बेहतर भी, पर तुम्हें एक बिन्दु पर ठहरना आता ही नहीं... कभी कुछ... तो कभी कुछ... तुम्हारे पास हज़ारों आइडिया हैं, पर उनको पूरा करने की इच्छाशक्ति नहीं है। तुम्हारे पास रहस्य और रोमांच से भरे क़िस्से हैं, लेकिन तर्कशैली नहीं। तुम्हारे पास अनेक सपने हैं, पर सपनों को साकार करने की दृष्टि नहीं। इसलिए कई बार तुम रहस्यमयी हो जाती हो, तो कई बार जिद्दी भी, तो कई बार अहंकारी भी और कभी-कभी दयालु भी। सबसे निरासक्त कैसे रह लेती हो? रहती भी हो या रहने का नाटक करती हो!

जिस बात या विचार या आइडिया पर हम काम करना शुरू कर देते, पता चला वह तुमने हवा में उड़ा दिया या जिसके बारे में हमने सोचा तक नहीं था, उस पर तुमने काम करना शुरू कर दिया! है न तुम्हारे अनिश्चय का खेल। तुम्हारे ऊपर तो कोई फर्क ही नहीं पड़ता है।

कभी भी कोई भी 'डिसीजन' कैसे ले लेती हो? सब सच ही कहते हैं, तुम इस दुनिया के साँचे में 'फिट' नहीं बैठती हो! यह दुनिया आपसे अलग नहीं हो सकती! समाज को बदलने में समय लगता है। समाज का भी मनोविज्ञान होता है! मैं जानती हूँ। मैं मैच्योर हूँ!

ठहरो माँ, तुमसे बातें करके मैं असमंजस पर पड़ जाती हूँ। मैं तो तुम्हारी एक मुकम्मल तस्वीर देखना चाहती हूँ तो वह बिखरी-बिखरी सी लगती है। टूटी काँच की चूड़ियों में जैसे रंग दिखते हैं वैसे ही रंग मुझे तुम्हारे व्यक्तित्व में दिखाई देते हैं! तुम भी तो एक 'कम्पलीट वुमन' नहीं हो। तुमसे भी तो सबको शिकायतें हैं। जब से मैंने आँख खोली है, तुमको कुछ अलग करते पाया है। तुमको साड़ियों, गहनों, बर्तनों, घर की साफ-सफाई से कोई वास्ता नहीं रहा... मिट्टी से, पत्थरों से, पेड़ों से, पत्तों से, रंगों से... प्यार करते देखा है। तुम्हारे लिए बादल, आसमान, पेड़, फूल-पत्ते मायने रखते हैं, हम इंसान नहीं! तुम कैसी औरत हो, तुमने दादाजी का घर, अपनी प्रापर्टी का हिस्सा, सब कुछ छोड़ दिया। जानती हो, इससे क्या हुआ, हम लोग बेघर हो गए। आज हमारे हाथ में कुछ नहीं है। सबकी डाँट के बावजूद तुमने स्वयं को कभी नहीं बदला। न तुम पूरी तरह से सांसारिक हो न संन्यासिनी, न तुम योगी न भोगी। तुम्हारी साधनाएँ, तुम्हारे काम, तुम्हारी कोशिशें, तुम्हारी मेहनत, तुम्हारी भाग-दौड़, तुम्हारी आशा-निराशा सब अपनी दिशा की तलाश में आधे-अधूरे पड़े हैं। अगर तुम्हें कुत्ते-बिल्ली पालने थे तो पाल लिए... रात-रात भर जागकर उनकी सेवा करती हो। दादा-दादी को इसीलिए तुमसे शिकायत है कि तुम उनकी सेवा की बजाय जानवरों की सेवा कर रही हो।

क्याऽऽ... सबने आना बंद कर दिया...

सच तो है, तुम्हारे बदबू भरे, गोबर-मिट्टी से लिपे-पुते बीहड़, मिट्टी, पत्थर से घर में कौन आएगा...?

यह तो तुम्हें डिसाइड करना है कि तुम किसको अपने जीवन में आने देना चाहती हो?

तुमको और कितना समझाऊँ? क्या करो, क्या नहीं? तुम्हें समझा-समझाकर मैं बूढ़ों की तरह बातें करने लगी हूँ।

यह तो सदियों से चला आ रहा सिलसिला है, माँ... समझने, समझाने का! यदि कोई आसानी से समझ लेता और आसानी से समझा देता तो हज़ारों-लाखों लोग... यूँ साधु-सन्यासियों के सामने भीड़ न लगाते। नहीं, मज़ाक नहीं बना रही। सत्य को छूने की कोशिश कर रही हूँ... तुम्हारी खातिर! तुम्हारी खातिर मैं क्या-क्या नहीं झेलती हूँ! कितने झूठ, कितने बहाने, कितने किस्से गढ़ती हूँ!

अब नई बातें... नई चिन्ताएँ! मेरी शादी की! मेरे कैरियर की! मेरे खुले सम्बन्धों की! समाज और परिवार को रोकने-टोकने, पता चलने की चिन्ता! मैं खुलकर जीती हूँ, सच्चाई से जीती हूँ। तुम्हारे परिवार में कितने किस्से सुनने को मिलते हैं। दादाजी तो बुढ़ापे तक में लड़कियों से सम्बन्ध रखते थे। उनको किसी ने कुछ नहीं कहा? क्यों! मेरे बारे में क्या सोचना... मैं आज की लड़की हूँ, आज के हिसाब से रह ही रही हूँ। यकीन करो, मैं अपना फ्यूचर बना लूँगी। मुझे पता है कि मुझे क्या करना है, क्या नहीं? मेरे सम्बन्ध समीर से... हाँ हैं। तो! छोड़ देगा! मैं भी कौन सा उसके साथ बँधकर रहना चाहती हूँ... शादी! जब कोई मिल जाएगा, कर लूँगी। हाँ, हाँ, हाँ...!

घर के कमरे बंद हैं, अँधेरे में डूबे। थोड़ा-सा उजाला कर दूँ। बाहर गाड़ियों का शोर है, भीतर तुम्हारी आवाज़ों का, जो कभी चिन्ता में डूबी होती हैं तो कभी रुलाई में, तो कभी शिकायतों में। बाहर पानी बह रहा है, मेरे भीतर... तुम्हारे आँसू! तुमने बेवक्त... मेरे भीतर स्वयं को थोप दिया है... मैं यूँ ही बूढ़ी हो जाऊँगी। यूँ अपनी कामनाओं को दबा दूँगी। तुम्हारी मनहूसियत ने मेरे खिलंदड़पन को, मेरे ठहाकों को, मेरी हँसी को, मेरी खूबसूरती को कुचल दिया है! तुम तय कर लो कि क्या देना चाहती हो विरासत में मुझे?

हाँ-हाँ, मैं कह दूँगी कि सब तुमको समझाना, सजेशन देना बंद कर दें। मामा, मौसी, बुआ- सबको कह दूँगी। दादी और नानी की पूरी उम्र अपनी बहुओं और बेटियों को समझाने में निकल गई और तुम्हारी आधी उम्र समझने और झेलने में। मज़े की बात यह है कि न वे तुम्हें समझा सकी हैं और न तुम समझ सकी हो... वे बूढ़ी औरतें सारी उम्र इसी खुशफहमी में रहती आई हैं कि उन्होंने तुमको कण्ट्रोल कर लिया। क्या इन बातों का... समझाइशों का कोई अंत नहीं है...?

हाँ... घर में उजाला हो गया है, दीये जल रहे हैं...। बाहर का अँधेरा मैंने दूर तक आकाश में धकेल दिया है। उजालों को मैंने भीतर बुला लिया है... हाँ... मैं इन अँधेरों, उजालों में भी नाचना चाहती हूँ... गाना चाहती हूँ... चीखना-चिल्लाना चाहती हूँ... कविताएँ तो तुम लिखती थीं, मैं तो डायरी लिखती हूँ। तुमसे छुपाकर रखती हूँ अपनी डायरी।

अच्छा सीरियस मैटर और बातें छोड़ो। बताओ मेरे बच्चे यानी बिल्लियाँ कैसी हैं! पेड़ों पर चढ़ी हैं। पूरे जंगल में घूमकर आ जाती हैं, मोरों से डर गई थीं? मोर आने लगे हैं। बिल्ले तो नहीं आते? मेरी बिल्लियाँ इतनी खूबसूरत और सेक्सी हैं कि बिल्ले न आएँ... ऐसा कैसे हो सकता है? हम लोग यहाँ एक कमरे के फ्लैट में रह रहे हैं, साफ हवा के लिए तरस जाते हैं। मेरी साँसें घुटने लगती हैं। सूरज की रोशनी देखने के लिए मेरी आँखें तरस जाती हैं। मैंने यहाँ आकर चाँद और तारे नहीं देखे और तुम... तुम जहाँ रहती हो, कितने खूबसूरत पेड़ हैं... पक्षी हैं... तालाब हैं... जानवर हैं... क्या सीन होता होगा सुबह और शाम का? शानदार! पेंटिंग की तरह!

अच्छा, ये बताओ माँ, तुमने पेंटिंग बनानी क्यों बंद कर दी! क्यों! क्यों! बताओ ना! कब बनाओगी? जब बूढ़ी हो जाओगी? उँगलियाँ काँपने लगेंगी! नज़र कमजोर हो जाएगी! तुम्हारा कोई इलाज नहीं सिवा इसके कि तुम अपनी कला की दुनिया में लौट जाओ! क्या करोगी पैसा बचाकर! मकान बनाकर! तुम जिस जगत में रह रही हो, वह कितनों को मिलता है। वे क्या जाने माँ, तुम कितनी स्वतंत्र पर्सन हो... बाहर से बँधी दिखती ज़रूर हो, पर तुम्हारे मन के बंधन... वो तुम्हारे खुद के बनाए हुए हैं... उपदेश नहीं! यही सच है! मैं तुम्हारी बेटी हूँ तो इसका मतलब यह नहीं कि मुझे दुनियादारी का अनुभव नहीं है। तुमसे ज्यादा जानती-समझती हूँ मैं लोगों को!

तो सुनो। बार-बार मत पूछा करो। आखिरी बार बता रही हूँ... बस...! मेरा काम अच्छा चल रहा है। मैं अपना जीवन खुद गढ़ रही हूँ। मुझे अपनी बुद्धि पर, सोच पर भरोसा है। नहीं, यह तुम्हारी गलतफहमी है। मुझे अपनी सुन्दरता पर घमण्ड नहीं है.. अभिमान है... मेरी सुन्दरता साधारण सुन्दरता नहीं है... जो पुरुषों को रिझाने के लिए हो... मैंने... सुन्दरता नहीं, सौन्दर्य को अपनी देह और दिमाग में तराशा है... मेंटेन किया है... सुन्दरता बहुत सामान्य सी भी हो सकती है... पर सौन्दर्य, उसको बनने... गढ़ने... और तराशने में सालों-साल लग जाते हैं। वह बुद्धि, ज्ञान, आत्मविश्वास और भीतर की चमक से चमकता है। तुम भी तो

सुन्दर हो। हाँ तुमने अपनी सुन्दरता को बेवक्त खो दिया है, मटमैला कर दिया है। क्या कहा, आत्मा की सुन्दरता... मन की सुन्दरता... हाँ-हाँ माँ... मैंने बहुत कुछ पढ़ा है, मैं जानती हूँ आत्मा के बारे में!...

अफकोर्स माँ... वह तुम्हारी आँखों में दिपदिपाती थी तारों की तरह...। तुम्हारी आँखों के वे तारे, वे जुगनू... वे ओस के कण... और क्या-क्या कहूँ... जिनके प्रकाश में मैं अपना रास्ता खोजना चाहती थी... पर माँ... हम दोनों का जीवन कुछ अजीब तरह का है, जिसकी कहानियाँ सुनते-सुनाते युग बीत जाएँगे! अच्छा छोड़ो... भी!

मैं तुम्हारी बातें समझती हूँ। गुनती हूँ। मनन करती हूँ। तुम मेरी देह में ही रची-बसी हो। आत्मा का, रक्त का सम्बन्ध है हमारा। जो मुझमें हैं, वह तुममें तो आएगा ही। अभी कोई चीज़ ऐसी नहीं बनी है, जो मनुष्य के खून और मांस-मज्जा से अलग... कुछ बना सके। टेस्ट ट्यूब बेबी हो या मटके में पलता भ्रूण, माँ धरती और अग्नि से पैदा हुई जीवात्मा, उसमें मनुष्य और सृष्टि के पंचतत्त्वों का योग तो होगा ही! मेरे भावों की उजास तुम्हारे भीतर फैली है। मेरी कला का दूसरा रूप तुम्हारे भीतर पल्लवित हो रहा है। मैंने रंग और ब्रश पकड़ा था, तुमने कैमरा। तुम मुझसे भी ज्यादा गहरी और दूर की चीज़ें देख सकती हो। कैमरे में कैद कर सकती हो। तुम्हारी आँख कैमरे की आँख जो है।

जानती हो मेरा सच... मेरे जीवन का सौन्दर्य... मेरी निजता... मेरी हँसी... किसने छीनी? आज इन सब बातों का रोना, रोना नहीं चाहती। मेरा बचपन मेरे भीतर दब गया था, मेरे भीतर क्षोभ था। अंतहीन पीड़ा थी। मेरे भीतर इतने समन्दर और इतनी नदियाँ हैं कि मैं उसी में डूबती-उतराती रहती हूँ। मेरी मन्नो! उस पीड़ा को, उस पराधीनता को, उस दबाव को मैंने पच्चीस साल तक झेला है, जिया है। पच्चीस साल! जो अपने पल-पल का हिसाब रखती हो... उसके पच्चीस साल का जाना... कितना वेदना से भरा होगा वह अनुभव! और पच्चीस साल... मेरे देखते-देखते चले गए। सच कहती हो, मैं शारीरिक रूप से बीमार नहीं हूँ। मैं पिछले कई सालों से मानसिक रूप से... आत्मिक रूप से बीमार चल रही हूँ। मैं इस देह के पिंजरे से बाहर निकल, समय के पंख लगाकर उड़ना चाहती थी, मैं अपने सपनों और कल्पनाओं का एक छोटा-सा संसार रचना चाहती थी... बस। कल्पना करो कि पूरे एक जीवन में किसी का एक सपना तक पूरा न हो सके, उसे कैसा लगेगा?

मैं बहती नदी एक तालाब में सिमट गई, फिर तालाब एक सूखे पोखरे में। क्या यही मेरी नियति थी? नहीं ना! मन्नो, लोग क्यों नहीं समझते कि मेरा संसार इस अनन्त आकाश में... इस हरी-भरी धरती में एक कोना मात्र चाहता था।

कहो... कहो कि मैं मिट्टी की बेटी हूँ.. पत्थरों की सखी हूँ, मैं हरी दूब की ओस हूँ... मैं नदी में रहने वाली मछली हूँ, मैं आसमान में उड़ने वाली चिड़िया हूँ... मैं एक छोटी सी गुड़िया हूँ... मैं एक लघु तारिका हूँ इस ब्रह्माण्ड की। मेरे स्वप्नलोक का संसार बहुत छोटा है... बहुत नगण्य सा।

मैं शिकायत नहीं कर रही। मैं किसी से कुछ माँग भी नहीं रही, न प्यार, न सम्पत्ति, न घर-द्वार... न भरोसा... न वायदा... न बुढ़ापे का सहारा, न इहलोक और परलोक से मुक्ति, मोक्ष पाने की कामना! मैं तो सबकी चिन्ताओं से परेशान हूँ... चिन्तित हूँ... मुझे थोड़ा-सा एकान्त चाहिए! थोड़ा और अपना सा लगने वाला एकान्त! एकान्त! एकान्त!! एकान्त!!!

मन्नो, घबराना नहीं। कल तबीयत बिगड़ गई थी! हॉस्पिटल आना पड़ा था!

मैसेज पढ़ते ही मन्नो की रुलाई फूट पड़ी। मन-आत्मा की दीवारों को फाड़ती रुलाई... कमरे में गूँजने लगी थी। ट्रेन नहीं, बस नहीं, टैक्सी नहीं। हवाई जहाज। वो भी दूसरे दिन का! उड़कर पलों में माँ के पास पहुँच जाना चाहती है। क्या हो गया माँ को! क्यों हो गया!... क्या माँ कभी ठीक नहीं होगी। किसी के कहे शब्द तीर बनकर तो नहीं चुभ गए उनके मन में। आँखों में नींद नहीं। मन में चैन नहीं। हृदय में छपाछप कुछ गिर रहा है। स्मृतियों की घाटियों में चिड़िया की तरह चक्कर लगा रही है मन्नो।

सीधे हॉस्पिटल पहुँची। प्राइवेट रूम में सन्नाटा पसरा है। खिड़कियों पर हरे रंग के परदों के पीछे दिन का उजाला पसरा है। ड्रिप और दवाइयों के बीच माँ का मुरझाया साँवला-सा थका चेहरा! चेहरे का नूर, चेहरे की मांसपेशियाँ, चेहरे की बनावट ही बदल गई। मन्नो स्तब्ध!! मन्नो चुप। मन्नो काष्ठ बन गई? माँ जो एक नदी की तरह थी... माँ जो एक कविता की तरह थी... माँ जो एक पेंटिंग की तरह थी। माँ... मूर्ति में धड़कन की तरह थी... माँ... माँ...
मन्नो...!

मन्नो हड़बड़ाई। चौंकी। फिर सँभली। आँखों में सिमटा धुँधलापन उतर रहा है।

'चिन्ता मत करो। मैं आ गई हूँ।' मन्नो ने माँ के गरम-नरम वक्ष पर सिर रख दिया। बिखरे बालों ने माँ को चारों तरफ से ढाँप लिया। मन्नो की बाँहों ने बाँध लिया माँ की थकी देह को! माँ के आँसू नहीं थम रहे। सिसकियाँ! फिर मौन! फिर टूटे-फूटे संवाद! फिर मुस्कराहट की रेखाएँ।

एक हफ्ते बाद डिस्चार्ज करवाकर मन्नो माँ को ले जा रही है। सीधे स्टूडियो! अब कोई सवाल नहीं। कोई चिन्ता नहीं। कोई आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ नहीं। किसी का इन्तज़ार करती आँखें नहीं। शिकायत करती जबान नहीं। तुम्हें ठीक होना है। ठीक रहना है। तन-मन को बचाना है। मैं सिर्फ तुम्हारा खून मांस-मज्जा नहीं हूँ, मनोविज्ञान की विद्यार्थी रही हूँ। चेतन, अवचेतन और अर्धचेतन मन की सारी अवस्थाओं-स्तरों को... सबको पढ़ा है। तुमको पढ़ने की आदत सी बन गई है। बंद हॉल के दरवाज़े खोल दिए। दूर तक घने पेड़ों की कतार नज़र आ रही है। परिन्दे चहचहा रहे हैं। इतने तरह के परिन्दे! इतनी तरह की आवाज़ें! इतनी तरह की हवाएँ! हवाएँ गुनगुना रही हैं।

'उठो। पानी पियो। कपड़े बदलो।'

'उठो। खड़ी हो जाओ। लो खाना खाओ। दूध पिओ। फल खाओ।' मन्नो ने भूमिका बदल दी। मन्नो कठोर अभिभावक बन गई है!

'देख लिया कोई बीमारी नहीं है। तुम्हारा इलाज कोई डॉक्टर नहीं कर सकता।' धूल खा रहे कैनवस को साफ किया। जंग खा रहे स्टैण्ड को ढूँढ़ लाई। डिब्बों में बंद पड़े रंग के ट्यूब निकाले। ट्रे में रंग, ब्रश, नाइफ सजा दिए हैं। सजा दिया है माँ के जीवन का साज-शृंगार।

'पकड़ो। माँ कहीं कुछ नहीं छूटा है। सब कुछ तुम्हारे भीतर है। जो दब गया था, उसे बाहर निकालो।' एक गुरु की हिदायत! आदेश! माँ ने ब्रश पकड़ा, हाथ काँप रहे हैं। उँगलियों की पकड़ ढीली है।

‘होगा माँ... होगा... हिम्मत करो। यह कोई जंग का मैदान नहीं है... यह तुम्हारे जीवन का मैदान है... समझी ना।’ मन्नो स्थिर दृष्टि से देखते हुए कह रही है। उसकी आवाज़ में अजीब-सा सुरूर उतर आया है। ब्रश ने हल्के से रंगों को छुआ... रंग कैनवस पर बिखरे। कुछ टेढ़ी-मेढ़ी सी आकृतियाँ उभरी। छोटी आकृतियाँ बड़ी होने लगीं। रेखाओं के बीच रंग भरे जाने लगे। रंग फैलते गए। रंगों से कैनवस पर आकाश उतर रहा है, सूरज अपना रंग बदल रहा है, धरती का कोई छोर दीख रहा है... बाहर खड़े पेड़ अन्दर आ गए हैं... कोई स्त्रियाँ अपना वजूद तलाशती... स्वयं को गढ़ने में लगी है... माँ के हाथ अब तेजी के साथ चल रहे हैं... इतनी तेजी के साथ कि कहीं कुछ छूट न जाए... वर्षों का छूटा हुआ, ठहरा हुआ एक ही बार में पूरी रफ्तार से पकड़ लेना चाहती है...

मन्नो ने कैमरा निकाला... और चित्र बनाती माँ की तस्वीर खींचने लगी...

‘माँ, इधर देखो... इधर... मेरी तरफ... मुस्कुराओ और... हँसो... जोर से, और जोर से।’ और पेड़ों पर चहचहाती चिड़ियों ने, सरसराती हवाओं ने सुनी माँ और मन्नो की वो हँसी जो हवाओं के साथ बहती हुई आसमान में गूँज रही थी।

◇.....◇

रिश्तों की गरिमा

तनुजा चौबे
लेखक, चित्रकार, फ़ैशन डिजाइनर, बुटीक संचालन, काव्य संकलन "देहरी पर सजे ख्वाब" प्रकाशित
tanuja.choubey08@gmali.com

सुबह पाँच बजे से ही ऊपर के फ्लोर से भागदौड़ की आवाज़ें सुनाई देने लगती थीं। पतिदेव राघव रिटायरमेंट के बाद एक एनजीओ से जुड़ गए थे, जहाँ सुबह आठ बजे तक पहुँचना ज़रूरी होता था। इस कारण उन आवाज़ों से रजनी के लिए समय पर उठना अब आसान हो चला था। अलार्म लगाने की ज़रूरत ही महसूस नहीं होती थी।

हर सुबह अदिति पार्किंग में स्कूटर पर आती और अपने बेटे को पुकारती। उसका बारह साल का बेटा स्कूल के लिए नीचे आता, तुलसी में पानी डालता, फिर हड़बड़ाता हुआ गेट के बाहर दौड़ता। कभी पानी की बोतल, तो कभी पेन या पेंसिल ऊपर ही छूट जाती। अदिति झुंझलाकर सीढ़ियाँ चढ़ती और बेटे को टोकते हुए, फिर वही माँ वाली आत्मीयता से सामान लाकर देती और स्कूल छोड़ने जाती। घर के कामों से निवृत्त होकर जब ऑफिस के लिए निकलती, तो मुझे आवाज़ देकर घर की चाबी सौंप जाती। उस विश्वास ने हमारे रिश्ते को एक अलग गहराई दे दी थी।

अदिति एक निजी कंपनी में कार्यरत थी और अक्सर शाम को आठ बजे तक घर लौटती थी। दिन भर की थकान के बावजूद वह चार बजे जल्दी घर आती, बेटे को चेस क्लास छोड़ने जाती। पूरे दिन उसकी भागदौड़ — कभी सब्ज़ी का ठेला, कभी स्विगी से राशन मंगवाना, तो कभी बच्चों की ज़रूरत का सामान लाना — निरंतर चलती रहती। कभी-कभी उसे देखकर मन में एक सवाल उभरता, शादीशुदा होते हुए भी वह सिंगल पेरेंट की तरह क्यों जूझ रही है? क्या माँ की ज़िम्मेदारियाँ वाकई पिता से ज़्यादा होती हैं? या फिर रिश्ते की खामोशियाँ ज़िम्मेदारी के स्वरूप को बदल देती हैं?

अदिति का पति एक प्रतिष्ठित रेडीमेड कपड़ों की दुकान का मालिक था, जो शहर के युवाओं में खासा लोकप्रिय था। हमेशा व्यस्त, लेकिन ऐसी भी क्या व्यस्तता कि अपने ही बच्चे को वक्त न दे सके? सिर्फ रविवार को मैंने उसे उसके बच्चे के साथ आते-जाते देखा।

गुरुवार अदिति की छुट्टी का दिन होता था। उस दिन मैंने स्वयं को मानसिक रूप से तैयार किया और शाम को ऊपर चली गई। अदिति मुझे देखकर प्रसन्न हुई और बेटे को आवाज़ दी। वह अभिवादन करता हुआ आया और पास बैठ गया। थोड़ी देर बाद अदिति बोली, “बेटा, आंटी को चाय बनाकर दो।”

बेटे ने मुस्कराकर पूछा, “इलायची वाली?”

मैंने चौंककर देखा, तो अदिति हँसते हुए बोली, “कभी अदरक वाली, कभी इलायची वाली बनवाती हूँ, इसलिए पूछ रहा है।”

मैंने मुस्कुराकर कहा, “इलायची वाली।”

वह जल्दी से चला गया और थोड़ी ही देर में चाय और बिस्किट की ट्रे लेकर लौटा। चुपचाप ट्रे रखकर फिर

अपने कमरे में चला गया।

उसकी नज़ाकत और समझदारी ने मुझे सोचने पर मजबूर कर दिया - जब माँ अकेली बच्चों को पालती है, तो उसकी उलझनों की छाया बच्चों पर पड़ती है। लेकिन अदिति के बेटे में किसी भी प्रकार की कोई असंतुलन या झल्लाहट नहीं दिखती थी।

हाँ, उसका दिन-रात ऊपर हॉल में क्रिकेट खेलना थोड़ी खीझ ज़रूर पैदा करता था। गेंद की आवाज़ें कभी नींद में खलल डालतीं, तो कभी ध्यान भटकातीं। राघव शांतिप्रिय स्वभाव के थे और अब बच्चों की किलकारियों के बिना रहने के आदी हो चुके थे। कई बार कह चुके थे, "उसकी माँ से कहो कि बॉल फेंकना बंद कराए। माँ-बाप को तो समय है नहीं, और बच्चे का कोई तय रूटीन भी नहीं।"

मैं बात को टाल देती। अदिति की थकावट भरी आँखें देखकर शिकायत करने का मन नहीं होता।

एक बार दोपहर में उसका बेटा स्कूल से लौटा, तो चाबी लेते समय मैंने स्नेहपूर्वक पूछा, "गरम दाल-चावल खाओगे?"

वह शालीनता से बोला, "नहीं आंटी, माँ शेक बनाकर रख गई हैं। स्कूल में खाना मिल जाता है। माँ जब चार बजे आएंगी, तब नाश्ता करके खेलने जाऊँगा।"

उसके जवाब में एक संतुलित समझदारी थी - उम्र से कहीं ज़्यादा।

रविवार का दिन था। ऊपर असामान्य सी शांति थी। मैं सोचने लगी - आज वह चंचल बालक कहाँ है? तभी अदिति सैंडल खटखटाती हुई नीचे आई। मैं अपने को रोक नहीं पाई, पूछ बैठी, "अरे, वह शैतान कहाँ गया आज?"

वह मुस्कराई, "आज उसका 'पापा डे' होता है। शनिवार को मैं होमवर्क पूरा करवा देती हूँ, और रविवार को उसके पापा उसे घुमाने ले जाते हैं। वीडियो गेम, क्रिकेट, बाहर का खाना सब उसकी पसंद का होता है। कोई रोक-टोक नहीं।"

मैंने थोड़ा कौतूहल से पूछा, "इतनी आसानी से मान जाता है?"

"हाँ, क्यों नहीं? उसके पापा आज दुकान से अपनी छुट्टी कर लेते हैं। मैं भी अपनी ज़िंदगी के कुछ पल अपने लिए रख पाती हूँ। छह दिन मेरे साथ, और एक दिन उनके साथ। वह इस दिन का पूरे हफ्ते इंतज़ार करता है — और शायद मैं भी।"

मैंने कहा, "पूरा परिवार साथ चले जाया करो। अलग-अलग क्यों?"

अदिति ने हल्की मुस्कान के साथ सिर झटकते हुए कहा, "फिर कभी बताऊँगी। आज मूवी का प्रोग्राम है, चलती हूँ।"

आज बेटे ने सारी क्लास में टॉप किया था। अदिति ने मुझे चाय-नाश्ते के लिए ऊपर बुलाया। दो कमरों का

मकान साफ़-सुथरा और सुसज्जित।

एक में कंप्यूटर, बिस्तर, ड्रेसिंग टेबल। दूसरा उसके पति का कमरा था — जहाँ एक्सरसाइज़ का सामान, कपड़े और एक छोटा फ्रिज रखा था।

मन इंसानी स्वभाव है, जहाँ नहीं जाना चाहिए, वहीं पहुँच जाता है। मैंने सहजता से पूछ लिया, “कुछ बात है क्या?”

थोड़ी देर चुप रहकर वह बोली, “आपने पूछा है, तो बताती हूँ। हम साथ तो रहते हैं, पर साथ नहीं। जब बेटा पाँच महीने का था, तब पैसों को लेकर बड़ा झगड़ा हुआ था। उसने मुझे अपमानित करने की सारी सीमाएँ लांघ दीं और मैं भी ग़ुस्से में बहुत कुछ कह गई।”

“माँ ने कहा था, घर छोड़ दो। लेकिन मैं कैसे जाती? लव मैरिज थी, सबका विरोध किया था, अब उन्हीं के पास वापस कैसे लौटती?”

“तभी हमने तय किया कि हम साथ रहेंगे, मगर अपनी-अपनी दुनिया में।”

मैंने अनुभव के आधार पर धीमे स्वर में पूछा, “क्या मानसिक और शारीरिक संबंधों पर भी विराम है?”

वह कुछ क्षण रुकी, फिर बोली, “मन से तो हम बहुत पहले दूर हो चुके हैं। शारीरिक और आर्थिक... दोनों सीमाएँ तय हैं। खर्च आधा-आधा। बाक़ी जब जिसका जैसे मन हो... मैं कमरे में चली जाती हूँ...”
बात अधूरी छूट गई।

मैं समझ गई कुछ रिश्ते ज़िम्मेदारी में बँधते हैं, अपनत्व में नहीं। वे ज़रूरत भी हैं, और बोझ भी।

बेटा जब स्कूल से आता, खुद ही खाना लेता, चाबी से ताला खोलता, वापस ज़िम्मेदारी से मुझे लौटाता, मोबाइल सिखाता, चाय बनाता — उसकी हर आदत में परवरिश की नज़ाकत झलकती थी।

एक दिन मोबाइल के किसी ऐप को सीखने के लिए मैंने उसे बुलाया। वह धीरे से आया, मुस्कराया और जितनी बार मैंने पूछा, उतनी ही सहजता से समझाता रहा। तब जाना कमी मेरे धैर्य में थी, उसकी समझ में नहीं।

मैंने उन्हें कभी झगड़ते नहीं देखा, न ऊँची आवाज़ में बोलते। पर उनके संवादों में एक महीन आवरण था, एक चुप्पी, जो कई बार कुछ कहती थी और कई बार सब छिपा लेती थी। शायद झगड़े के बाद उनके बीच संवादहीनता आ गई थी।

बेटे का स्कूल से आना, खुद खाना लेना, उम्रदराज़ आंटी को मोबाइल सिखाना, चेस का चैंपियन बनना इन सबमें दोनों की सूझबूझ और अनुशासन का अद्भुत समन्वय दिखता था।

शारीरिक और आर्थिक ईमानदारी के साथ, संवाद और ज़िम्मेदारी के उस संतुलन में उन्होंने बेटे की जो परवरिश की थी, वह सचमुच प्रेरणादायक थी। मनभेद होकर भी रिश्ते में एक दूसरे के प्रति ईमानदारी

होना...

काश, झगड़े के वक्त भी यह समझदारी दिखाई होती... शायद तब रिश्तों की ज़मीन और नरम होती और दौड़ती ज़िंदगी में थोड़ा सुकून भी।

पर अब, जो है, जैसा है - उसमें भी उन्होंने रिश्ते को जो गरिमा दी है, वह आलोचना नहीं, सराहना की पात्र है।

नहा रहे नवगीत

शिवानन्द सिंह 'सहयोगी'
उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा निराला पुरस्कार से सम्मानित

नहा रहे
नवगीत आजकल
नई कहन की
बाढ़ में।

भाव सवेरे
उठ जाते हैं
अक्षर के मंदिर जाते हैं
व्यथा-कथा
सोनल थाली में
अभिधा की समिधा लाते हैं
भाषा की
झालर टँगवाते
बिंब वटों की
डाढ़ में।

परिवर्तन को
नाप रहे हैं
खड़े-खड़े वे पानी में
मन उनका
बसता है अब तो
युग की नई कहानी में
लयता के
संगीत
सजाते
हर शैली के
पाढ़ में।

बदली हुई
परिस्थितियों के
शाब्दिक शहर बसाते हैं
उसमें कभी न
छेद किए हैं
जिस
थाली में खाते हैं
कथ्यों का
सोना
चढ़वाते
नए शिल्प की
दाढ़ में।

ओढ़ी हुई उदासी का लोकगीत

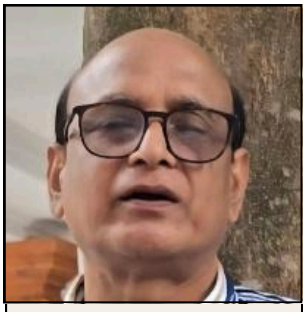

जयप्रकाश मानस
वरिष्ठ कवि, निबंधकार
और हिंदी कर्मी

ओढ़ी हुई उदासी
जैसे खेत के किनारे
सूखी मेड़ पर बैठा बिजूका
जिसके कंधों पर
चिड़ियाँ भी अब नहीं उतरतीं।

यह उदासी
वैसी है
जैसे बैल की गर्दन से फिसलकर
गुम हो गई घुँघरू की आख़िरी झंकार
या जैसे बिन-तेल के दीये में
साँझ की लाली आधी ही रह गई हो।

कभी यह
चक्की के पाटों के बीच फँसी हुई हवा है
जो पिसते अनाज के साथ
अपनी कराह - धीरे-धीरे गूँजाती है।

और फिर
अचानक —
बरसों से सूखे कुएँ की सीढ़ियों पर
एक हरी काई उग आती है
मानो उदासी भी
अपने भीतर से
कोई छोटा-सा मौसम बचाकर रखती हो।

(रेलवे लाइन के किनारे-किनारे बसे ओड़िसा-झारखंड के कुछ गाँवों से गुज़रते हुए)

◇.....◇

ढो रही हैं सभ्यताएं

अंकित शर्मा 'इषुप्रिय'
मध्यप्रदेश

कुछ निरर्थक मानकों को, ढो रहीं हैं सभ्यताएं।
त्याज्य होना चाहती हैं, आज कुंठित धारणाएं।

बुद्धि-तरु पर उग रहे जो, शूल किंचित रूढ़ियों के।
जड़ किए गतिशील होते, पैर भावी पीढ़ियों के।
सह रही नूतन व्यवस्था, देह पर नित यातनाएं।
त्याज्य होना चाहती हैं, आज कुंठित धारणाएं।।

पुस्तकों में आचरित हैं, श्रेष्ठ शिष्टाचार सारे।
आचरण से लुप्त सच है, क्या तुम्हारे क्या हमारे।
हो गई सबसे प्रमुख हैं, सिर्फ़ अपनी कामनाएं।
त्याज्य होना चाहती हैं, आज कुंठित धारणाएं।।

छल रहे हैं छद्म नित, अभिमान मन को संस्कृति के।
हैं सृजकर मति भूमि पर हम, और पोषक विकृति के।
भ्रम जनित पथ के पथिक हो, छोड़ दीं वर वीथिकाएं।
त्याज्य होना चाहती हैं, आज कुंठित धारणाएं।

चींटियों के पर निकल आए

रहमान मुसव्विर
जामिया मिलिया इस्लामिया-दिल्ली में प्राध्यापक

वो कहते थे कि देखो चींटियों के पर निकल आए
बस इतनी बात थी हम छोड़ अपना घर निकल आए

हमारे शहर में सर की हिफ़ाज़त मसअला ठहरा
किसे मा'लूम है किस सम्त से पत्थर निकल आए

किसी आवाज़ ने आवाज़ दी ख़ामोशियाँ टूटीं
जहाँ थीं सिर्फ़ दीवारें वहाँ पर दर निकल आए

मिरी फ़िहरिस्त से एक नाम भी ख़ारिज नहीं होता
न जाने कौन किन हालात में बेहतर निकल आए

'मुसव्विर' लोग कुछ बाहर के अंदर जम के बैठे हैं
जिन्हें अंदर ही रहना था वो सब बाहर निकल आए।

◇·····◇

प्यार की महफ़िल

भारतेन्दु 'विमल'
बीबीसी (हिंदी) में प्रसारक

सारे जहाँ में प्यार की महफ़िल सजानी चाहिए
हम को नए अंदाज़ में अपनी कहानी चाहिए।

जो मौसम-ए-गुल आज है वो कल चला भी जाएगा
हमको बहारों से कोई उनकी निशानी चाहिए।

जब चांदनी बन आसमाँ से छू लिया मेरा बदन
तो ये बला की दूरियाँ भी तो मिटानी चाहिए।

क्यों बंद पलकों में समेटे हैं उजाले आपने
ये रौशनी हमराह को भी तो दिखानी चाहिए।

जब हुस्न के दरबार में हर फ़ैसला करते हैं आप
तो इश्क़ से रस्मे-वफ़ा भी तो निभानी चाहिए।

जब आप सावन बन के बरसे मैं तरसता ही रहा
कोई तो बदली इस तरफ़ इक बार आनी चाहिए।

क्यों हर नदी कल-कल किया करती है मैं समझा नहीं
मेरी ज़मीं प्यासी है इसको 'आज' पानी चाहिए।

◇·····◇

ग़ज़ल-दर-ग़ज़ल

कौसर भुट्टो

इश्क़ की इब्तिदा है ग़ज़ल-दर-ग़ज़ल
या कोई मरहला है ग़ज़ल-दर-ग़ज़ल।

उनसे जो सिलसिला है ग़ज़ल-दर-ग़ज़ल
अब भी वैसा नया है ग़ज़ल-दर-ग़ज़ल।

तेरी यादों का मौसम सुहाना लगे
जैसे कोई घटा है ग़ज़ल-दर-ग़ज़ल।

तेरी राहों में आकर सँभलने लगा
दिल तेरा रहनुमा है ग़ज़ल-दर-ग़ज़ल।

तू जो कह दे तो ज़ख़्मों पर मरहम रखूँ
ज़ख़्म हर इक हरा है ग़ज़ल-दर-ग़ज़ल।

अब भी तेरे ख़यालों में उलझा हुआ
दिल मेरा बेवफ़ा है ग़ज़ल-दर-ग़ज़ल।

अब भी क़ैदें हैं दिल की हजारों मगर
ख़ुद को पाना रहा है ग़ज़ल-दर-ग़ज़ल।

उनसे मिलने बिछड़ने की दुश्वारियाँ
अब यही मस'अला है ग़ज़ल-दर-ग़ज़ल।

तुझको पढ़ना समझना ही काफ़ी नहीं
मैंने तुझको लिखा है ग़ज़ल-दर-ग़ज़ल।

रात भर धूप का सिलसिला सा रहा
चाँद मेरा जला है ग़ज़ल-दर-ग़ज़ल।

बड़े घर की बहू

रीता कौशल
(ऑस्ट्रेलिया)
शिक्षिका, पुरस्कृत
लेखिका और संपादिका
rita210711@gmail.com

चंचल घबराई हिचकिचाई सी पति के पीछे-पीछे 'विष्णु कोठी' में घुसी। शादी से पहले उसे यहाँ-वहाँ जाने का ज़्यादा मौक़ा नहीं मिला था। पढ़ाई पूरी करते-करते शादी हो गई। अब तो वह शादीशुदा है इसलिए आना-जाना, व्यवहार, समाज, नाते-रिश्तेदारी, उसे ही निभानी थी। यही समझाते हुए पति उसे लाया था 'विष्णु कोठी' में रहने वाले अपने मित्र के संयुक्त परिवार से मिलवाने। 'विष्णु कोठी' शहर के बीचों-बीच एक एकड़ की ज़मीन में फैली थी, जो क़रीब 60 साल पहले बनी थी। तब से चार पीढ़ियाँ बदल चुकीं, इसे बनाने वालों की।

थोड़ी देर 'विष्णु कोठी' में रुककर शहर से बीस मील की दूरी पर एक सिद्ध मंदिर में दर्शन के लिए निकल गए दोनों परिवार। मंदिर में 'विष्णु कोठी' की बहू हर मूर्ति के सामने माथा टेकती, बड़ी ही श्रद्धा भाव से पूजा-अर्चना कर रही थी। मंदिर का परिसर छोड़ने से पहले दान पेटी में पाँच सौ का नोट डालना भी न भूली। अपने तीन-वर्षीय पुत्र के हाथ से सौ का नोट अलग से चढ़वाया।

ये सब देख चंचल मन ही मन सोच रही थी, "देखो इसी को तो कहते हैं बड़े घर की बहू... दान-पुण्य के लिए न दिल तंग है न हाथ।"

मंदिर से लौटते समय का कच्चा रास्ता एक गाँव के भीतर से गुजरता था। इस रास्ते के दोनों किनारों पर फटेहाल औरतें-बच्चे टोकरियों में अमरूद बेच रहे थे।

"गाड़ी रोको!" अचानक 'विष्णु कोठी' वाली बहू ने ड्राइवर को आदेश दे अपनी बी.एम.डब्लू. कार रुकवा दी ।

"यहाँ के अमरूद बहुत अच्छे होते हैं... एकाद किलो ख़रीदते हैं।" वह चंचल की तरफ़ मुखातिब हो बोली। अब बड़े घर की बहू का रूप बदल गया था। वह तार-तार हो चुकी मैली धोती में अपने बदन को छिपाने की कोशिश करती मरगिल्ली सी स्त्री से, बताए गए दामों के आधे भाव में सौदा पटा अमरूद थैले में भर रही थी। स्त्री के मलिन मुख पर हताशा और बड़े घर की बहू के चेहरे पर कुटिल मुस्कान पसरी हुई थी।

हाऊ आर यू

रोहित कुमार 'हैप्पी'
editor@bharatdarshan.co.nz

'अरे, आज तो रविवार है, हरे रामा-कृष्णा टेम्पल चलें।' पैंट-शर्ट, टाई, सुन्दर जूते आदि पहनकर सब तैयार होकर चल दिए। मंदिर पहुंचे तो देखा ज़्यादातर भारतीय पाश्चात्य रंग में रंगे प्रतीत हुए; कुछ के सिर पर हैट्स भी लगे थे!

हरे रामा-कृष्णा मंदिर के यूरोपियन लोग भगवे कपड़ों में थे - धोती-कुरता, पैरों में खड़ाऊं, गले में जनेऊ, हाथ में माला और सिर पर चोटी। लगा कि जैसे दोनों ने आपस में वेशभूषा बदल ली हो - भारतीय लोगों ने यूरोपियन और यूरोपियन ने हिन्दुस्तानी! समझना कठिन था कि हिंदू कौन है?

हमने मंदिर के हाल में प्रवेश किया, बैठने लगे तो एक यूरोपियन ने कहा, 'हरे रामा-हरे कृष्णा, कैसे हो?'

मैंने जवाब दिया, 'अच्छा हूँ, धन्यवाद।'

मैंने अपनी बगल में बैठे एक भारतीय से कहा, 'नमस्कार, कैसे हो?'

'गुड थैंक्स। हाऊ आर यू?' जवाब मिला।

◇·····◇

उपवास

राममूरत राही
rammooratrahi@gmail.com

ये कहानी उलझी हुई है – अगर उपवास से ख़ुशहाली आती है, तो आ ही जानी चाहिए थी

"मम्मी, पापा और आप उपवास क्यों करते हैं?" दस-वर्षीय सार्थक ने अपनी मम्मी से पूछा।

"बेटा, घर की खुशहाली के लिए।"

"मम्मी, क्या हम दूसरों की खुशहाली के लिए भी उपवास रख सकते हैं?" सार्थक ने फिर पूछा।

"हाँ बेटा! लेकिन तुम क्यों पूछ रहे हो?"

"मम्मी, कल से मैं भी उपवास रखूंगा।"

"तुम क्यों रखोगे बेटा! हम हैं ना?"

"मम्मी, मैं सच-सच बताऊं, आप मुझे डाँटेंगी तो नहीं?"

"नहीं बेटा, भला तुझे क्यों डाँटूंगी?"

"मम्मी, हम जहाँ क्रिकेट खेलने जाते हैं ना, वहाँ हमारे साथ एक लड़का भी खेलता है, जो बहुत ही गरीब है। उसके पिता नहीं हैं; वे चार-पांच भाई-बहन हैं। उसकी मम्मी मज़दूरी करती है। इसलिए मैं उसके लिए उपवास रखना चाहता हूँ, ताकि भगवान उसके घर भी खुशहाली लाएं।"

"बेटा! तुम अपने उस दोस्त को क्यों नहीं कहते कि वो उपवास रखे?"

"मम्मी! वो तो हमेशा ही हफ्ते में दो-दो दिन उपवास रखता है।"

गिरगिट

सुलभा बीस-पच्चीस दिन से कोमा में थी। बहू आशी और बेटा अभय दिन-रात सेवा में लगे थे। एक बार आशी ने खीजकर अभय से कहा, "मैं तो इनकी सेवा करते-करते ऊब गई हूँ। अब भगवान इन्हें उठा ले तो अच्छा है।"

"अरे... ऐसा क्यों बोलती हो?" अभय ने थोड़ा गुस्से से कहा।

"क्यों न बोलूँ?" आशी ने अकड़कर कहा।

"अम्मा घर की पालनहार हैं। अगर उन्हें कुछ हो गया तो?"

"तो... तो क्या हो जाएगा, आसमान फट जाएगा?" आशी ने चिढ़कर कहा।

"आशी! मुझे प्राइवेट कंपनी में सिर्फ बीस हजार सैलरी मिलती है, जबकि अम्मा को पेंशन पच्चीस हज़ार..."

यह सुनकर आशी अवाक रह गई, और फिर सास की लंबी उम्र के लिए दुआ मांगने लगी।

◇.....◇

एशिया महाद्वीप में क़िस्सागोई की दास्तानगोई

कुछ यादें... कुछ हकीकतें!

नासिरा शर्मा
साहित्य अकादमी व व्यास सम्मान से पुरस्कृत लेखिका, संपादक, अनुवादक, पत्रकार और फ़िल्म-निर्माता
nasera.sharma@yahoo.co.in

जिस तरह फ़ारसी में मसनवी लिखने का चलन था; उसी तरह उर्दू में भी। इनको काव्यखंड भी कहा जाता है, और सरल अभिव्यक्ति में हम कह सकते हैं कि कविता के रूप में या नज़्म की तर्ज़ पर कहानी कहना। फ़ारसी भाषा के कवि निज़ामी गज़नवी की रचना ख़मसा या पंचगंज उनकी प्रसिद्ध पाँच मसनवियों का संकलन है। अपने समय के दास्तान-सराई के महान कवियों में उनका शुमार होता है। निज़ामी 1141 में गंज में पैदा हुए। उनके अपने समय के बादशाह ने उनसे कहा कि वे शीरीन व खुसरो पर ऐसा लिखें जो फ़िरदौसी से अलग हो, जिसमें जंग से ज़्यादा उस इश्क़ का बयान हो जो असली कहानी में मौजूद था।

इस तरह निज़ामी ने पांच मसनवियां लिखीं जो ख़मसा कहलाई - लैला व मजनू, सिकन्दरनामा, मगज़न-अल-असरार, हक्फ़ पैकर और सात गुंबद - इसमें कवि ने बहराम बादशाह की वीरता और युद्ध-विजय का वर्णन किया है।

इस कारण यह काव्य खंड बहरामनामा के नाम से भी प्रसिद्ध है। चूंकि बहराम ने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी, इस खुशी में उसने हुक्म दिया कि आकाश के सात उपग्रहों के नाम और रंगों पर आधारित गुंबद बनाए जाएं। ज्योतिषियों की कल्पनाओं के अनुसार, हर गुंबद का रंग उपग्रह के रंग का था - पहला काले रंग का जो शनि से लिया गया, दूसरा बृहस्पति से जो चंदन के रंग का था, तीसरा मंगल के लाल रंग का, चौथा सूर्य की तरह पीला, पाँचवाँ शुक्र की तरह सफेद, छठा बुद्ध की तरह फिरोज़ी और सातवाँ चंद्रमा के आकार का। इन गुंबदों में उसने सात देशों की राजकुमारियों को रखा, जो शहजादियाँ हिन्दुस्तान, तातार, नीमरूस और सलाओ इत्यादि से थीं, जिनसे उनसे शादी की। जिस दिन वह जिस शहज़ादी के पास जाता, उसकी रिहाइश के गुंबद के रंग का लिबास पहनता। और, हाँ, उस शहज़ादी के मुँह से एक कहानी सुनता।

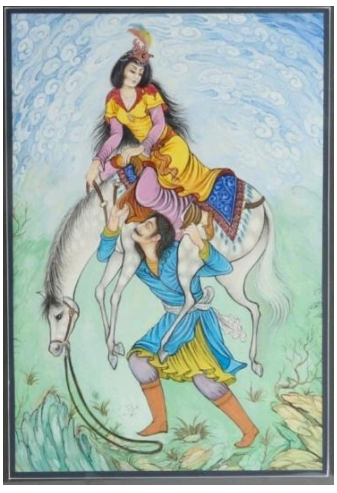

निज़ामी ने खुसरो व शीरीन की कहानी लिखी जो हिन्दुस्तान तक आते आते शीरीन और फ़रहाद में बदल गई। उस पर कई फ़िल्में भी बनी। कुछ ईरानी बुद्धिजीवियों का विचार है कि यह पहली रचना है, जो वर्गों की असमानता को दर्शाती है। खुसरो राजा है और शीरीन से प्यार करता है, और इसी तरह शीरीन भी। फ़रहाद मामूली नहर खोदने वाला है जिसने पत्थरों का सीना चाक कर शीरिन के लिए नहर खोदी ताकि उसमें बहाया दूध शीरीन तक पहुँच सके। एक बार जब शीरीन नहर देखने पहुंची तो उसका घोड़ा फिसल गया, फराद ने घोडे समेत शीरीन को कन्धे पर उठा लिया। खुसरो का जलना लाज़िमी था। एक मामूली इंसान को बड़े सपने सँजोने का तो हक था मगर वह यथार्थ में पूरा नहीं हो सकता था।

निज़ामी की इन पाँचों मसनवियों का अनुवाद मैंने हिंदी भाषा में किया है। यह मसनवी बहुत रोचक ढंग से कहानी कहती है। इस दास्तान की लम्बाई इस मुद्दे पर बढ़ती जाती है कि शीरीन खुसरो से केवल विवाह के बाद मिलना चाहती थी पर खुसरो उसकी मुहब्बत में दीवाना था और उसके दिल का हाल नहीं समझ पा रहा था। वह पहले से शादीशुदा भी था। अंत में उनका विवाह हो जाता है पर कहानी का अंत बहुत दर्दनाक है। नमूने के तौर, इस अनुवाद के कुछ उद्धरण दे रही हूँ:

'फ़रहाद किसी भटकी आत्मा की तरह जंगलों, पहाड़ों पर घूमता रहता था। इश्क ने उसके दिल का चैन और तन आराम छीन लिया था। उसकी आँखें सावन-भादों की तरह बरसतीं और दिल और जिगर से आहें निकलतीं। उसे अपने दर्द की कोई दवा पता न थी। दोस्तों से दूर, फ़रहाद के साथी अब हिरण व चीतल बन कर रह गए थे। रात को छुपकर वह शीरीन के महल में बने हौज के किनारे जाता, चुल्लू भर दूध पीता और वापिस जंगल में चला जाता। हर हफ़्ते शीरीन उसे महल में बुलाती थी और वह केवल शीरीन का मुख निहारता रहता और जंगल में लौट कर विरह के गीत गाता।

बहुत जल्द ही फ़रहाद के इश्क की बात दूर दूर तक फैल गई, यहाँ तक कि खुसरो परवेज़ के कानों तक पहुँच गई। उसे फ़रहाद की धूर्तता पर क्रोध आया, परंतु वह समझ न सका कि इस दीवाने के साथ क्या करे। फ़रहाद को न तलवार का भय था, न तीर का, और न ही जवान व बूढ़े का लिहाज़। खुसरो के प्रेम की अग्नि फ़रहाद के आचरण को देखकर भड़क उठी। आखिर उसने अपने मित्रों से मशवरा किया कि आखिर इस पागल के साथ क्या व्यवहार किया जाए? क्योंकि यदि छोड़ देता हूँ तो मेरी बात बिगड़ती है। यदि मरवा देता हूँ तो एक बेगुनाह के खून से हाथ रंगता हूँ। दरबारियों में से कुछ ने कहा कि इस मुश्किल का हल पैसा है, पैसा देखकर आँख वाला भी अंधा हो जाता है और लोहा मोम बनकर पिघल जाता है। यह सुनकर खुसरो परवेज़ ने पत्थर तराश फ़रहाद को दरबार में बुलवाया। फ़रहाद हाज़िर हुआ; उसकी नजरें नीची थीं, उसने खुसरो के शाहाना तख्त-ओ-ताज की तरफ़ आँख उठाकर भी नहीं देखा। वह सांसारिक सुखों और लालचों से दूर था। खुसरो के इशारे से, गुलामों ने हीरे-जवाहरात के ढेर फ़रहाद के कदमों पर लगा दिए परंतु जो मोती फ़रहाद के दिल में था, उसके आगे सब कुछ ख़ाक था।'

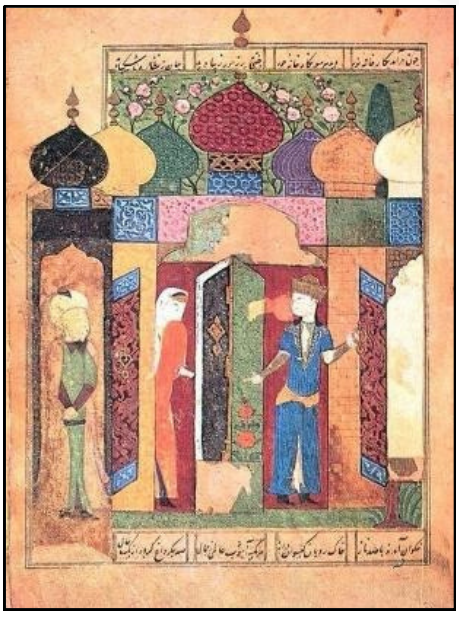

मुगल बादशाह-अकबर के शासन काल में लाहौर के खुशनवीस मुहम्मद अल-कश्मीरी ने, जिन्हें ज़रीन कलम के नाम से जाना जाता था, शानदार चित्रों से सजाकर हश्तबहिश्त हस्तलिखित पाण्डुलिपि तैयार की। यह पांडुलिपि (IV. 624) फिलहाल बाल्टीमोर-मैरीलैंड के वाल्टर्स आर्ट म्यूज़ियम में मौजूद है। इसमें जो चित्र हैं, मुगल कलाशाला के खास चित्रकारों द्वारा पेश किए गए हैं। इसे शाही संरक्षण में फ़ारसी की साहित्यिक और कलात्मक परम्परा का महत्वपूर्ण दस्तावेज़ माना गया है। कहा जाता है, अमीर खुसरो को लिखने की प्रेरणा हफ़्त पैकर के ही शाहनामा से मिली, जिसकी शैली अलिफ़-लैला की है।

हश्त-बहिश्त में आठ बहुमूल्य और अलंकृत दरवाज़े हैं। अमीर

खुसरो ने कई बादशाहों का ज़माना देखा था। दरबारों में उनका उठना-बैठना था। दूसरी तरफ़, वह निज़ामुद्दीन औलिया के दीवाने थे। इसके उलट, निज़ामी का दरबार में जाना कम था, लेकिन उनकी रचनाएँ शहज़ादों को समर्पित की गई हैं। शायद यह उस समय का कोई रिवायती अंदाज़ हो। निज़ामी ने अपना प्रभाव बाद के कवियों पर डाला, जिन में हाफ़िज़, शिराजी, रूमी और अमीर खुसरो के नाम प्रमुख हैं। फिरदौसी के बाद, मसनवी लेखन में इन्हीं का नाम आता है। उनके द्वारा अलंकृत लैला-मजनू की दास्तान सदियों की यात्रा करती भारत में बरसों से चर्चित है, जिस पर भारत में फिल्में बनी, नाटक खेले गए और कई मुहावरे भी वजूद में आए। अपनी शायरी उन्होंने अज़ीरी भाषा में भी की है। आज से लगभग चार दशक पहले उज़बैकी चित्रकार रानो हबीब ने अपनी प्रदर्शनियों में इन सात शहज़ादियों को उन्हीं रंगों के हिसाब से ढाला। यकीनन यह एक साहित्यिक कला की अभिव्यक्ति थी, जिसे जी भर के प्रशंसा मिलनी चाहिए थी मगर इन्हें देखने को पहुँचे कलाप्रेमियों को न तो निज़ामी के बारे में कुछ पता था और न ही सात गुम्बद और सात शहजादियों द्वारा सुनाई कहानियों का इल्म। रानो हबीब उस शाम बहुत उदास रही।

अपूर्ण होकर भी महत्वपूर्ण है मशीन अनुवाद कृत्रिम बुद्धिमत्ता

बालेन्दु शर्मा दाधीच
ICANN के यूनिवर्सल एक्सेस एम्बेसडर
balendu@gmail.com

अनगिनत विभाजनों में बँटे हुए हमारे विश्व में मशीन अनुवाद की ख़ासी अहमियत हो सकती है। यह आपसी संचार, संपर्क, समझबूझ को प्रोत्साहित करने वाला और हमारे ज्ञान को विस्तार देने वाला औज़ार भी है। मशीन अनुवाद के प्रति इंसान की जिज्ञासा, कल्पना-शक्ति और महत्वाकांक्षा अनेक रूपों में प्रकट होती रही है - दंतकथाओं, मिथकों, साहित्य और फ़िल्म में भी।

हॉलीवुड की मशहूर फ़िल्म शृंखला 'स्टार ट्रैक' में बहुत सारी आश्चर्यजनक तकनीकों के साथ-साथ सार्वभौमिक अनुवादक (Universal Translator) को भी दिखाया गया है। यह हार्डवेयर उपकरण है जो किसी भी भाषा को तुरंत समझ लेता है और उसे किसी भी अन्य भाषा में अनुवाद कर देता है, भले ही वह भाषा अज्ञात हो। यह न केवल मौखिक बल्कि लिखित भाषा का भी अनुवाद कर सकता है, जो अंतरिक्ष यात्रा के दौरान विभिन्न ग्रहों और सभ्यताओं के साथ संवाद करने का ज़रिया बनता है तथा भाषा के कारण होने वाली गलतफ़हमी और संघर्ष को रोकने में मदद करता है।

हालाँकि अब तक इस तरह का उपकरण नहीं बनाया जा सका है, जो अज्ञात भाषाओं को भी समझ ले, लेकिन फिर भी आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस से युक्त आधुनिक प्रणालियों ने मशीन अनुवाद को आम लोगों के लिए सुलभ बना दिया है। अपने मोबाइल फ़ोन के ज़रिये आज आप लगभग उसी तरह से विभिन्न भाषाओं के बीच ध्वनि, टेक्स्ट और चित्रों के रूप में अनुवाद कर सकते हैं, भले ही फ़िलहाल हम उन्हीं भाषाओं तक सीमित हैं जिनमें मशीन अनुवाद प्रणालियों को प्रशिक्षित किया गया है। अलबत्ता, जिस गति से ए.आई. के क्षेत्र में प्रगति हो रही है, कौन जाने आगे चलकर हम इस स्थिति में पहुँच जाएँ कि हमारी अनुवाद प्रणालियाँ नई भाषाओं को इंसान पर निर्भर हुए बिना, खुद ही सीखने लगें।

चलिए, फ़िल्मों और मिथकों की दुनिया से अपने मौजूदा समय की ओर लौट आएँ। बौद्धिक और अकादमिक विमर्श में मशीन अनुवाद की अपनी अहमियत है और बहुत से मौकों पर इसका ज़िक्र आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस तथा नैचुरल लैंग्वेज-प्रोसेसिंग से इतर भी होता है। वह जिज्ञासाओं, दिलचस्पी और कल्पनाओं का एक अलग दायरा समेटे हुए है जिसके अच्छे-बुरे दोनों पहलू हमें आकर्षित करते हैं। संभवतः इसलिए कि मशीन अनुवाद मानव संस्कृति के एक बेहद महत्वपूर्ण तत्व-भाषा के साथ जुड़ा हुआ है, जहाँ संस्कृति, साहित्य, इतिहास, शिक्षा, मीडिया जैसे बहुत सारे क्षेत्र प्रासंगिक तथा जीवंत हो उठते हैं।

मशीन अनुवाद जहाँ अनगिनत उम्मीदें जगाता है, वहीं अपनी ग़लतियों से हमें निराश भी कर सकता है और अपनी उत्कृष्टता से हमें भौंचक्का भी कर देता है। अलबत्ता, यही उम्मीदों भरा अधूरापन मशीन अनुवाद की ख़ूबसूरती है जो इसे हम इंसानों की ही तरह त्रुटि-सक्षम और आलोचनीय भी बनाती है।

ब्रह्माण्ड के मूलभूत नियमों से एक यह है कि कुछ भी पूर्ण (निर्दोष) नहीं है। पूर्णता का कोई अस्तित्व ही नहीं है... बिना अपूर्णता के न तो आपका और न ही मेरा कोई अस्तित्व हो सकेगा। — प्रो. स्टीफ़न हॉकिंग

तकनीकी दृष्टि से, मशीन अनुवाद प्राकृतिक भाषा संसाधन के सबसे ज़्यादा इस्तेमाल किए जाने वाले तीन अनुप्रयोगों में से एक है। बाकी दो अनुउपयोग हैं - वाक् से पाठ परिवर्तन (text to speech) और कंटेंट निर्माण (content generation), नैचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग से जुड़ी अन्य प्रक्रियाओं, विधियों, चुनौतियों, घटकों और विकास के चरणों में से लगभग सभी का मशीन अनुवाद से भी संबंध है, जैसे कि नियम आधारित प्रणालियाँ (Rule-Based Systems), सांख्यिकीय प्रणालियाँ (Statistical Systems) और गहन शिक्षण प्रणालियाँ या तंत्रिकीय प्रणालियाँ (Deep Learning Systems or Neural Systems) जिन्हें हम प्राकृतिक भाषा संसाधन (Natural Language Processing) के विकास के तीन काल-विभाजक चरण मानकर चल सकते हैं।

सवाल यह उठता है कि जब मानव के लिए ही सटीक अनुवाद अबूझ पहेली की तरह है तब वही काम करने वाली मशीनों की स्थिति क्या होगी? क्या कोई मशीन इस तरह के विविधतापूर्ण तथा कुछ हद तक अंतर्विरोध से भरे दृष्टिकोणों से सोच सकती है? मूल टेक्स्ट का वास्तविक अर्थ क्या है और उसे लक्ष्य भाषा की सीमितता या व्यापकता (दोनों में ही दुविधा है) को ध्यान में रखते हुए सही अर्थ देते हुए कैसे अभिव्यक्त करूँ, क्या इस तरह के प्रश्नों पर मशीनों द्वारा भी विचार किया जाना संभव है?

अनुवादक को इस योग्य होना चाहिए कि वह दोनों भाषाओं में समानार्थक शब्द तथा विन्यास उपलब्ध न होने के बावजूद अपने वाक्यों को पुनर्संरचित करके सही अर्थ ज़ाहिर कर सके; मशीनों द्वारा 'सोचने' की संभावना नहीं है, उनके द्वारा परिणाम देने की प्रक्रियाएँ इंसान से अलग हैं, भले ही अंतिम परिणाम एक से दिखाई देते हों। मानव अनुवादक की दुविधा और धर्मसंकट जैसी कोई समस्या मशीन के लिए प्रासंगिक नहीं है, वह तो अपनी पूर्व निर्धारित नियम-प्रक्रियाओं के आधार पर अनुवाद उगलती रहेगी। हाँ, इस बीच अगर उसे कोई नए नियम, नया डेटा, नया प्रशिक्षण आदि दे दिया जाए तो परिणाम बदल जाएँगे। जिस मशीन को उपर्युक्त प्रश्नों, दुविधाओं और वास्तविक अर्थ आदि की समझ नहीं है, वह अनुवाद की प्रक्रिया को तीन अलग-अलग संदर्भों में इस तरह से देखती है:

नियम आधारित: मशीन अनुवाद प्रणालियों के दृष्टिकोण से, अनुवाद का अर्थ है एक भाषा के पाठ को दूसरी भाषा में बदलने के लिए भाषाई नियमों और शब्दकोशों का उपयोग करने की प्रक्रिया।

सांख्यिकीय: मशीन अनुवाद प्रणालियों की दृष्टि में अनुवाद का अर्थ है - दोनों भाषाओं के पूर्व में उपलब्ध अनुवादों (bilingual corpora) का सांख्यिकीय विश्लेषण करना, फिर यह देखना कि स्रोत भाषा के कौन-से वाक्यांशों का पहले किन वाक्यांशों में अनुवाद किया गया था, और अंत में तलाशे गए पैटर्नों को सही क्रम में लगाते हुए लक्ष्य भाषा में पेश करना।

न्यूरल: मशीन अनुवाद की दृष्टि में अनुवाद का अर्थ है अथाह प्रशिक्षण डेटा के ज़रिये सीखे गए पैटर्नों के आधार पर, गहन शिक्षण प्रणालियों (deep learning models) का उपयोग करते, हुए संपूर्ण स्रोत वाक्य को लक्ष्य वाक्य में बदलना।

भाषा-निरपेक्ष विश्व की ओर मशीन अनुवाद का श्रेष्ठ उपयोग करने के लिए उसकी कार्यप्रणाली के बारे में जानकारी होना आवश्यक है, भले ही उन सूचनाओं की प्रकृति तकनीकी प्रतीत हो। मशीन अनुवाद, वर्तमान परिस्थितियों में अपूर्ण प्रतीत होता है, किंतु फिर भी आम आदमी तक अनुवाद की शक्ति को पहुँचाने का

जो कार्य उसने किया है, वह अद्वितीय है;

अगले एक-दो दशकों में हम भाषा-निरपेक्ष विश्व की ओर बढ़ सकते हैं। आप हिंदी में बोलेंगे और लोग आपको अंग्रेजी में सुन सकेंगे जबकि अंग्रेजी बोलने वाले व्यक्ति को आप हिंदी में सुन सकेंगे। ऐसी स्थिति में यह बात अधिक महत्वपूर्ण नहीं रह जाएगी कि आपने किस भाषा में पढ़ाई की और किस भाषा में अपना कामकाज करते हैं। फिलहाल यह सब तिलस्मी प्रतीत होता है लेकिन कुछ वर्षों बाद ये परिकल्पनाएँ मशीनी नहीं रह जाएंगी बल्कि हमारे दैनिक जीवन का सहज हिस्सा होंगी। कृत्रिम मेधा या तकनीकी बुद्धिमत्ता हमें फिर से बदलाव के उसी मोड़ पर ले आई है जैसा बदलाव सदियों में एक बार घटित होता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता का दूसरा बड़ा प्रभाव होगा अन्य प्रमुख भाषाओं के साथ हिंदी के गहरे संबंधों का विकसित होना। महान लेखकों के साहित्य से लेकर रामायण, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता, वेद, पुराण, उपनिषद जैसे ग्रंथ, आयुर्वेद-योग जैसी ज्ञान संपदा, हमारी पत्रकारिता और विश्वविद्यालयों के शोध आदि दुनिया भर में गैर-हिंदी पाठकों तक पहुँच सकते हैं, वहीं हम मशीन अनुवाद के माध्यम से वैश्विक ज्ञान को अपनी भाषा में ग्रहण कर सकेंगे।

मशीन अनुवाद कृत्रिम बुद्धिमत्ता के दायरे में आता है और कृत्रिम बुद्धिमत्ता हमारे व्यवहार, कामकाज, नए-पुराने विशालतम डेटा भंडारों, मानवीय फीडबैक, अपनी गलतियों आदि से सीखने तथा स्वयं को निरंतर निखारने में सक्षम है। कुछ वर्षों के भीतर हम ऐसे मशीन अनुवाद की स्थिति में पहुँच सकते हैं जो मानवीय अनुवाद की ही टक्कर का होगा और जो कंप्यूटर तथा मोबाइल के जरिए ही नहीं बल्कि दर्जनों किस्म के डिजिटल उपकरणों के ज़रिए उपलब्ध होगा।

हिंदी में शिक्षण सामग्री तैयार करना आसान तथा तेज़ हो जाएगा। आज केंद्र सरकार तथा कुछ राज्य सरकारों के निर्देश पर हिंदी में पाठ्य-सामग्री तैयार करने के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग होने लगा है। अंग्रेजी-फ्रेंच या जर्मन की किताबों को स्कैन करके चंद मिनटों में सीधे हिंदी में अनुवाद करना संभव हो गया है। कल्पना कीजिए कि हम हिंदी में जिन विषयों में अच्छी सामग्री की कमी से परेशान रहे हैं, उन विषयों में अचानक ही दर्जनों या सैंकड़ों पुस्तकें उपलब्ध हो जाएँ। वाचिक ज्ञान को डिजिटल स्वरूपों में सहेजा जा सकेगा। हिंदी भाषी लोग वैश्विक संस्थानों में पढ़ सकेंगे, भाषाओं की सीमाओं से मुक्त रहते हुए कौशल प्राप्त कर सकेंगे और विश्व को अपनी सेवाएँ दे सकेंगे।

ऐसी अकल्पनीय घटनाएँ आने वाले वर्षों में सामान्य परिपाटी बन सकती हैं, यदि हमारी भाषा अपने दौर के इन आधुनिक अनुप्रयोगों को आशंका, उपेक्षा या घृणा की दृष्टि से न देखे बल्कि उनके प्रति खुला दृष्टिकोण रखे।

क्योंकि कांटों को मुरझाने का ख़ौफ़ नहीं होता

डॉ. गरिमा संजय दुबे
सहायक प्राध्यापक
(अंग्रेज़ी साहित्य)
Drgarimadubey801@gmail.com

जीवन की यात्रा के हर पड़ाव में कितने विरोधाभास हैं। हमारे जीवन ही क्यों प्रकृति की हर शै विरोधाभासों से ही तो भरी पड़ी है। रचने वाले विधाता के मन में कौन से दो ध्रुव रहें होंगे जो उसने सबके विलोम रचे हैं। सोचिए विलोम न होता तो क्या होता, सब हरा होता धूसर न होता, मीठा ही होता कटु नहीं होता, खट्टा ही होता मीठा नहीं होता, जल ही होता शुष्कता न होती, बर्फीले ध्रुव ही होते तपते रेगिस्तान न होते, नदिया समंदर, झरने ही होते चट्टानें न होती, दिन ही दिन होता रात न होती, रौशनी ही रौशनी ही होती तिमिर न होता, बचपन ही होता बुढ़ापा न होता, सुंदरता होती बदसूरती न होती, कोमलता ही होती कठोरता न होती, अच्छा ही होता बुरा न होता, एक बहुत लंबी सूची हो सकती है ना इसकी, अब एक और क्या होता जो फूल ही फूल होते कांटे न होते।

अब पूछिए ऐसा भी क्या नकारात्मक विलोम का आकर्षण कि आप एक के बाद एक गिनती करवाए जा रहीं हैं। लेकिन क्या किया जाए जब किसी ऐसी जगह आप पहुंचे जहां फूल कम और कांटे अधिक हो और उन कांटों का सम्मोहन ऐसा कि दूर दूर से लोग उन्हें देखने आए। यहीं नहीं राजपरिवार के एक राजा द्वारा उन कांटों को सहेजा गया हो बड़ी नफ़ासत से, बड़े प्यार से, कांटों से इस प्रेम का रहस्य कुछ समझ नहीं आया। लेकिन इंसानी दिमाग है, कब कहां कैसे किस तरफ झुक जाएगा क्या कहिए। जी हां, ऐसी ही एक जगह जाना हुआ, मध्य प्रदेश के रतलाम जिले के सैलाना कस्बे के कैक्टस-गार्डन में, एशिया की सारी कैक्टस प्रजातियां यहां हैं, और तब भौचक हो मैं भी कांटों के अद्भुत सम्मोहन में गिरफ़्त हो गई।

कैसी अद्भुत तो गढ़न थी, और कितने प्रकार। एक बार फिर प्यार उमड़ आया प्रकृति के अपरिमित सौन्दर्य बोध पर, हाथ चूम लेने का मन हुआ उस रचनाकार का जिसने इन पर भी अपनी नज़रें इनायत की हैं। एक पल को बच्चों सी कल्पना उतर आई मन में (सोच कर खुद ही खुश हो ली कि चलो आज भी मेरा मन बच्चों की तरह मासूम बेवकूफियां करने की कूवत रखता है, दिल तो बच्चा है जी, ये मन बच्चा बना रहे, आमीन) ख़ैर ,तो वह क्या मासूम बेवकूफी थी जो इन कांटों को देख मैंने की कि जब भगवान ने बहुत सुंदर-सुंदर फूल बनाए होंगे और सब तरफ रंग-बिरंगे फूल उनकी खुशबू और तारीफ़ गूंज रही होगी तो ये बेचारे कांटे और कंटीले पौधे अपने धूसर रंग और गंधहीन होने पर दुखी होते, रोते सुबकते विधाता के पास पहुंचे होंगे और वह उदार अवढर ने गोद में ले उन्हें पुचकारा होगा और अपनी तूलिका से इनमें भी रंग और सौंदर्य भर दिया होगा। साथ ही कह दिया होगा कि सामान्य नहीं हो तुम, कुछ विशेष आंखें ही पहचान पाएंगी तुम्हारे विशिष्ट सौन्दर्य को, जाओ तुम "एक्सट्रैक्ट" हो जाओ और तब से कैक्टस अपने एक्सट्रैक्ट सौन्दर्य से एक्सट्रैक्ट अँखियों को लुभाते है। अब आप कह सकते हैं कि स्थूल आंखों की कमजोरी के साथ ईश्वर ने मेरी अंतर की दृष्टि एक्सट्रैक्ट बना दी है (हा हा हा, मियां मिट्ठू)।

कैसा होगा ना जब ईश्वर ने समंदर बनाया तो उस असीम को हज़ार-हज़ार रत्नों से भर दिया लेकिन उसे खारा कर दिया, अनंत आकाश को विस्तार दे दुर्गम बना दिया, रेत के मीलों लंबे रेगिस्तान बना धरती के उस भाग को बचा लिया, उत्तर दक्षिण ध्रुव को कैसे बचा लिया, घने जंगल, दुर्गम हिमालय रहस्यों, सिद्धों

चमत्कारों की भूमि, सोचिए ये सब न होते या सब सहज होते तो, यानी समंदर खारा न हो कर मीठा होता तो हमने गंगा की तरह उसे भी खत्म कर देना था। उसके रत्न खत्म हो जाते, हिमालय दुर्गम न होता तो भौतिकवाद और हमारे लालच ने वहां भी बस्तियां बना लेनी थी। कैसी अद्भुत व्यवस्था है, प्रकृति की जिसे सहेजा जाना है, उसे दुर्गम, जटिल, भयावह, बना दो तभी वह अपने अस्तित्व को बचा पाएगा। जो अनमोल है, उसे थोड़ा अबूझ, थोड़ा असामान्य बना दो। उसके अंदर निहित विशिष्ट गुण केवल उसी दशा में बचे रहेंगे जब उसने अपने ऊपर कोई दुर्गम आवरण डाल रखा हो।

क्या यह बात इंसानों और प्रतिभाओं पर लागू नहीं होती? कहते हैं कि प्रतिभा का अपना एक औदात्य होता है, जिसे आम बोलचाल की भाषा में लोग 'ईगो' या 'एटीट्यूड' समझने की भूल कर बैठते हैं। बहुत अच्छे इंसानों में, बेहद प्रतिभावान मनुष्यों में एक अजीब सी कठोरता, एक अजीब सा खारापन, एक किस्म का टेढ़ापन, कुछ ऐसा जो बूझा न जा सके या कि ऐसा कि लगे बस बोधगम्य हुआ ही जाता है कि वह अपने किसी एब्स्ट्रैक्टपने से फिर आपको चिड़ा दे। या कोई एक ऐसी आदत होती है जो उन्हें दूसरों से थोड़ा दूर रखती है, या यूं कहूँ कि वे स्वयं अपने आसपास एक घेरा बना लेते है ताकि हर कोई सहजता से उन्हें न पा सके। जो पहचानने की जिज्ञासा रखता है वह तो अंततः अपनी एक्सट्रैक्ट दृष्टि से सायास उन्हें पा ही लेगा। अपने अंदर के एब्स्ट्रैक्टपने को बचाने के लिए कांटे जरूरी हैं। ठीक जैसे कि कैक्टस अपने शरीर पर कुछ कांटे उगा लेते हैं ताकि अपने अंदर की नमीं सहेज सकें। है ना एक्सट्रैक्टपने बात। क्यों हर गुणी चीज़ दुर्गम होती है, अब पता चला।

एक आम कस्बा जिसे यूँ देखने पर कोई खास बात आपको पता नहीं चलती जब तक कि कोई आपको बता न दे कि यहां के राजमहल के एक गार्डन में एशिया में पाए जाने वाले कैक्टस की लगभग सभी प्रजातियां हैं। यूँ तो कांटेदार पौधे और विशेष रूप से कैक्टस को घरों में नहीं रखा जाता लेकिन क्योंकर राजा दिग्विजय सिंह जी सैलाना को इन पर लाड़ उमड़ा कि पूरा एक बागीचा ही बनवा दिया। जिन मिट्टियों में ये पनपते हैं, उस मिट्टी को भी विदेशों से मंगवाया गया। सबसे पुराने विशाल कैक्टस को देखना रोमांचक था, जिसे देख किसी भयावह कंटीले राक्षस का आभास होता है और भय की सिहरन रीढ़ में दौड़ पड़ती है। एनिमेशन की दुनिया की तरह लगा कि अभी इसकी कोई दो विशाल शाखें हाथ बन हमें अपनी गिरफ़्त में ले लेने को दौड़ पड़े तो। कुछ कैक्टस को देख तो ऐसा लगा मानो किसी ने ढोल को सीधा खड़ा कर दिया हो, कहीं लगा किसी गृहिणी ने अभी अभी कैसरोल के पूरे सेट को माँजकर उल्टा सूखा दिया है, और पीछे बड़ी प्यारी सी डिज़ाइन है। इतने गदराए पत्ते की तोड़ो तो पानी की धार निकल पड़े, कहीं सीधे स्तंभनुमा तो कहीं राह खोजो, तो पहेली के उलझे रास्तों की तरह कोई सिरा न मिले, कहीं ऐसे छोटे छोटे से नन्हे-नन्हे रूप कि लगे कि मम्मा-पापा कैक्टस के दोपहर में सो जाने पर ये बेबी कैकटाई चुपके से बाहर खेलने निकले हों। कहीं लगे जैसे किसी बुजुर्ग की तरह किसी खूंटी पर टंगे फटे पुराने कोट की तरह ("a tattered coat upon a stick" - W.B. Yeats) अप्रासंगिक हो गया हो। कहीं टेबल-टेनिस के बैट की तरह, कहीं नाग' के फन की तरह, कहीं लम्बी पतली बन्दर की पूँछ की तरह, एकटक देखने पर लगे सरसराकर आपकी तरफ लपक पड़ेंगे और आप अनायास ही अपना पैर झटक दें और समझ आने पर खिसियानी हंसी से आसपास देखने लगे कि किसी ने आपकी यह हरकत देखी तो नहीं।

इन सबके बीच झांकता राजमहल अपूर्व रहस्यमयी सौन्दर्य का चित्र रच देता है। यूँ भी पुराने राजमहल का ऐसा सौन्दर्य मुझे सदैव आकर्षित करता है, ऐसा लगता है मानो अभी झरोखे से कोई राजकन्या या

राजपुरुष झांकता सा दिख जाएगा, वैसे कुछ कुछ डरावना सा भी। भयावहता का भी एक आकर्षण तो होता ही है। क्या राजा ने अपनी प्रथम भेंट में कोमलांगी, दूसरे राज्य की राजकुमारी जो अब उनकी वामांगी थी को कैक्टस तो भेंट नहीं किया होगा? कभी लगता अपनी बेटी को महारानी क्या कभी इस बाग में आने देती होंगी? राजाजी का इनसे प्रेम इतना था तो क्या किसी शरद पूर्णिमा की रात में वे अपनी प्रिया के साथ यहाँ बैठे होंगे, या कि सुर और साज़ की महफ़िल तारों और पूरे चाँद के साथ इन काँटों संग सजाई गई होगी, भयानक काँटों के संग कोमल स्वर और कोमलांगी नर्तकी के मोहक नृत्य से कैसी विरोधाभासी रूमानियत रची गई होगी, यह तो वे ही बता सके हैं जिन्होंने कभी ऐसा किया हो। और क्या सौंदर्य होता होगा दिवाली की रात्रि का जब पूरा महल जगमगाता होगा इन कैक्टस के बीच लगी रोशनियों से। सोचकर देखिए कैसा अद्भुत, अनोखा सौंदर्य होता होगा वहां।

किन्तु ये कैक्टस लिप्त नहीं हैं, कहीं कोई प्रतिस्पर्धा नहीं, कहीं कोई इच्छा नहीं, कुछ साबित करने का प्रयास नहीं, अपने में ही मगन ये कैक्टस मुझे उन निर्लिप्त अघोरी योगियों, सिद्धों से जान पड़े जिनके सुदीर्घ तप ने उनके यौवन पर जटाओं का, उलझे रेशों का जाल बना लिया है। उन जटाओं और उलझे रेशों ने अनजाने ही उनमें एक अनूठा सौन्दर्य और रहस्यमयी आकर्षण पैदा कर दिया है। और जैसे संसार के तमाम वैभव और सौंदर्य को देखने के बाद बैरागी मन कभी-कभी उन रहस्यमय योगियों और उनके कौतुक को देखने दौड़ पड़ता है, ठीक वैसे ही फूलों की कोमलता, रंगों की अधिकता से, उनकी गंध से ऊबकर यदि मन उस खुरदुरे से स्पर्श, गंधहीन कटीले सौन्दर्य को देख लेने को मचल उठे तो किम आश्चर्यम।

स्वर्गीय हरिवंश राय बच्चन जी ने तो कैक्टस के फूलों को रात में आसमान से गिरा तारा कह दिया था। देखने जाएँगे तो कैक्टस के फूलों की अपनी आभा है और तो और कांटे भी इस कलात्मकता से गुंथे हुए हैं कि लगता है किसी फ़ैशन-डिज़ाइनर ने सितारे टांक दिए हों, काँटों की ऐसी गठन कि कुशल बुनकर भी चकमा खा जाए।

कभी उन्हें देखकर लगता है कि शिव ने जिस तरह और श्मशान की भस्म और सती का विलाप भभूत रूप में अपने ऊपर लगा अपने कर्पूर गौरम वर्ण को छुपा लिया था, ठीक वैसे यह किसी बिछड़ी प्रेयसी का विरह है जिसे कैक्टस ने अपने ऊपर कांटों की तरह सजा लिया हो और उसका सौन्दर्य छुपने के बजाय द्विगुणित हो गया हो। कौन जाने नागवंश के किसी राजकुमार ने प्रेमातुर हो अपनी प्रिया से बलात प्रेम पाना चाहा हो और उसने क्रोधित हो राजकुमार को शापित कर दिया हो कि जा अब किसी को अपने बाहुपाश में न ले पाएगा, सौन्दर्यवान होते हुए भी कोई तुझे छुएगा नहीं, तेरी देह के समस्त रोम कांटों में बदल जाएँ, और तब से यह नागफनी, यह वज्रकण्टका अपने प्रारब्ध को भोग रहा है। शाप मुक्ति किस राजकुमारी की चरण रज से होगी पता नहीं। खोने को कुछ न हो जिसके पास, या खोने का डर न हो ऐसी मलंग मस्ती का क्या कहिए। बच्चन जी के शब्दों में कैक्टस का फूल कहता है, "किसी विवशता से खिलता हूँ, खुलने की साध तो नहीं है; जग में अनजाना रह जाना, कोई अपराध तो नहीं है।"

तुम अनजाने नहीं रहे, पहचान लिए गए हो रुक्ष राजकुमार! तपते रेगिस्तान और बीहड़ों में भी कैक्टस रूपी राजकुमार का सौंदर्य अपनी मलंग भंगिमा से फल फूल रहा है, झूम रहा है। खूब फलो फूलो मलंग शहजादे, क्योंकि कांटों को मुरझाने का ख़ौफ़ नहीं होता।

◇.....◇

साहित्य में प्रसिद्धि का वास्तुशास्त्र

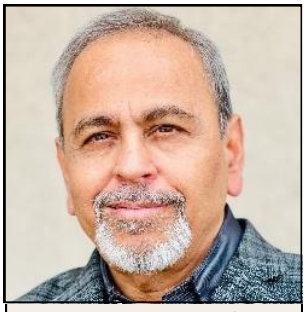

धर्मपाल महेंद्र जैन
dharmtoronto@gmail.com

लेखक बिरादरी में लाखों लोग परेशान हैं। वे रात-दिन रच रहे हैं पर उन्हें प्रसिद्धि नहीं मिल रही। वे इस जीवन से निराश हो चुके हैं। आत्महत्या का विचार आता भी है तो वे आत्महत्या नहीं करते। उन्हें सदा यह भाव सालता रहता है कि जो साहित्य अकादमियाँ उन्हें जीते-जी पुरस्कार नहीं दे रहीं वे उन्हें मरणोपरांत क्या देंगी! और तो और, वे जो अजर-अमर साहित्य रच रहे हैं, उनके आत्महत्या करते ही वह रद्दी की भेंट चढ़ जाएगा। साहित्यकारों को इस गहन अवसाद और व्यथा से बाहर निकालने के लिए मैंने लंबे समय तक 'रिसर्च' की है। मुझे लगता है साहित्य में प्रसिद्धि न मिलने का सबसे बड़ा कारण है घर में 'वास्तुदोष'। घर का वास्तुदोष दिमाग को भी जकड़ लेता है। यदि आप घर में ही 'फैक्ट्री' लगाकर बैठे हों और तरह-तरह की रचनाओं का लाभहीन उत्पादन कर रहे हों, तो यह आलेख आपके लिए ही है। कृपया आँखें अच्छी तरह खोल लीजिए और यदि बेहतर परिणाम चाहें तो अपने कमलमुख को स्वच्छ पानी से धो लीजिए ताकि आपके कमलनयन पूर्णतः खुल जाएँ। अब आप इस आलेख को पढ़िए और इसमें बताए गए सरल किंतु अचूक उपायों का पालन करिए, आपको अपूर्व सिद्धि मिलेगी।

आप कविता लिखना चाहते हैं तो अपने दिमाग और हाथ को उत्तर दिशा में रखें। क्या है न, जो दिमाग सोचता है हाथ वही लिखता है। इसलिए दिमाग और हाथ का एक ही दिशा में होना जरूरी है। उत्तर दिशा में पारदर्शी खिड़की अवश्य हो। आपने खिड़की पर अपारदर्शी पर्दे लगा रखे हों तो उन्हें दाएँ कोने में समेटकर खिड़की को पूरी तरह खोल दें। इससे शुद्ध हवा भीतर आएगी, वह अपने साथ नए-नए शब्द लाएगी। वह सामने वाली खिड़की से छोड़ी गई मनोहारी और मनभावन ऊर्जा भी लेकर आएगी। तब आप तुकांत-अतुकांत, गीत-नवगीत सब सहज ही लिख पाएँगे! यदि आपकी बैठक की उत्तरी दिशा में खिड़की न हो तो आप निराश न हों। उत्तर-पूर्व या उत्तर-पश्चिम दिशा में भी यदि खिड़की हुई तो वह आपको कवि बनने की उत्प्रेरणा दे सकेगी। इन तीनों दिशाओं में खिड़की नहीं है पर झरोखा है तो आप हाइकु, ताँका, चोका, रेंगा, सदोका, हाइगा आदि लिखने में अपने दिमाग का सदुपयोग करें, आपको भयंकर सफलता मिलेगी। इन तीनों दिशाओं में यदि कोई खिड़की या झरोखा नहीं है तो आप बाहर या 'खुले में' जाकर कविता न करें। यूँ अज्ञेय ने झूले पर बैठकर कविताएँ लिखीं और प्रसिद्धि पाई, पर तब आप खुले में कर सकते थे। अब खुले में करना दंडनीय अपराध है। कविता रचने के लिए कमरे की दीवारों का रंग सफेद हो तो श्रेष्ठ। दीवारों का रंग मटमैला हुआ तो कविताएँ मटमैली या द्विअर्थी होंगी। दीवारें लाल-पीले रंग की हुईं तो आप वीर रस की कविताएँ लिखेंगे और दीवारें गुलाबी हुईं तो प्रेम रस छलक-छलक आएगा। वास्तु की सलाह तो यही है कि यदि ऐसी खिड़की, झरोखा या रंग आपके घर में नहीं है तो आप जबरदस्ती कविता न लिखें। कविता लिखने के लिए घर की दीवार कतई न तुड़वाएँ। साहित्य की और भी विधाएँ हैं जिनमें आप अपना दिमाग आजमा सकते हैं!

यदि आप कहानी लिखना चाहते हैं तो अपने बेडरूम में बैठें। बेडरूम का द्वार पूर्व में खुलना चाहिए। बेडरूम में प्रवेश और निर्गम का यही एक द्वार हो। बेडरूम में प्रवेश और निर्गम के द्वार अलग-अलग हों तो कहानीकार खुद ही उपन्यास बन जाता है। यदि आपका बेडरूम 'लैट-बाथ अटैच' वाला हो तो उसके द्वार से आपको कोई खतरा नहीं है। अब आप उस द्वार की दिशा में अपने दिमाग और हाथ को रखें और आँखें बंद

कर लें। यदि आप आँखें बंद करके नहीं लिख सकते तो बेडरूम की रोशनी को पर्याप्त रूप से मंद रखें। आपको दिन में भी रात जैसी अनुभूति होनी चाहिए। शयनकक्ष सुवासित हो जाए तो क्या कहने! पूर्व दिशा के द्वार को आशा भरी नज़रों से कुछ मिनट ताकते रहें और मन में उठ रहे वैचारिक ज्वार को बेरोकटोक बहने दें। कुछ ही क्षणों में... आप ही पुरुष, आप ही प्रेयसी, आप ही भूतपूर्व प्रेमी, आप ही भूतपूर्व पति-पत्नी। आप कल्पना लोक में विचरने लगेंगे। रचने की इस चरम स्थिति में आप ही सब कुछ होते हैं। गोचर-अगोचर, मूर्त-अमूर्त, सब लिख डालिए। चिंता न कीजिए, लंबी से लंबी फिल्म भी बिना इंटरवल के तीन-चार घंटे में पूरी हो जाती है! बस आप उस द्वार की ओर बार-बार देखते रहिए, प्रसंग आते रहेंगे और कहानी बढ़ती रहेगी। यह कहानी तब ही समाप्त होगी जब कोई व्यवधान सशरीर उस द्वार से प्रवेश करेगा। यदि किसी बाहरी तत्व ने स-काया आपका ध्यान भंग नहीं किया तो आप कहानी क्या पूरा उपन्यास रच जाएँगे। और, यदि इस ध्यान-मुद्रा में आप लीन हो गए तो अमर हो जाएँगे। यदि आपके बेडरूम में 'पूर्वाभिमुख' कोई 'गच्छ-आगच्छ' द्वार नहीं है तो पूर्वोत्तर या दक्षिण-पूर्व में द्वार भी उपयोगी सिद्ध हो सकेंगे। कहानी लेखन के लिए बेडरूम की दीवारें गुलाबी हों तो श्रेष्ठ और गुलाबी में काली पट्टी लगी तो सर्वोत्तम। बेडरूम की दीवारें चटख रंगों की हों तो कहानी भी चटख बनती है। यदि आप मनोहर कहानियाँ लिखना चाहते हैं तो दीवारों का रंग काला करवा लीजिए। क्या है न, मन काला हो तो आसपास सब काला-काला सुकून देता है। यदि आपके बेडरूम की इन तीन दिशाओं में कोई द्वार नहीं है और अनुकूल रंग नहीं है तो कृपया कहानी लिखने का विचार छोड़ दें, उसमें आपको सिद्धि नहीं मिलेगी। फिर भी, यदि इन तीन दिशाओं में द्वार के स्थान पर खिड़की या झरोखा हो और आप उसे टकटकी बांधे देखते रहें तो आप लघुकथा लिखने में सिद्धि पा सकते हैं।

यदि आप नाटक लिखना चाहते हैं तो अपनी डाइनिंग टेबल से सटी कुर्सी पर बैठें। कुर्सी का मुख पश्चिम में कर लें ताकि आप अपनी पत्नी या माँ-बहन को किचन में काम करते देख सकें। यदि वे वहाँ सशरीर उपस्थित न भी हो तो उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। वास्तु की दृष्टि से किचन ऐसा कर्मस्थल है जहाँ वे सदैव गतिमान या विराजमान रहती हैं। नाटक में पात्र और संवाद निरंतर गतिमान रहते हैं, इसलिए वास्तुकारों ने रसोईघर और डाइनिंग टेबल को नाटक-सृजन के लिए सर्वश्रेष्ठ स्थान माना है। बस आप पश्चिमाभिमुख होकर घर की नारी को यदा-कदा देखते रहें और लिखते रहें। यदि आपको कोई संवाद न मिले तो कुछ देर उन्हें या उनकी ओर की दीवार को एकटक देखते रहें, संवादों की झड़ी लग जाएगी। कृपया घर की नारियों में 'कामवाली बाई' को बिल्कुल न गिने, आपने ऐसा खतरनाक योग साधा तो आपका नाटक असमाप्त रहेगा और आप ही समाप्त हो जाएँगे। जैसा कि पूर्ववर्ती वास्तु-नियमों में अनुमति दी गई है, आप अपनी कुर्सी का मुख दक्षिण-पश्चिम या पश्चिमोत्तर दिशा में रख सकते हैं ताकि आप गतिमान घरेलू नारी को अच्छी तरह देख सकें। नाटक लेखन के लिए किचन की दीवारों का रंग हल्का न हो। देसी किचन में इंगलिश रंग नहीं फबते। नाटक लिखने के लिए सिंथेटिक रंग की दीवारें श्रेष्ठ मानी गई हैं। पानी का कपड़ा मारा कि हल्दी-मिर्ची-छौंक का दाग साफ। संवादों को नाटकीय बनाने में बार-बार छौंक लगाना और फिर साफ़ करना पड़ता है। अब यदि आपके घर में किचन, डाइनिंग टेबल नहीं है, दीवारों का 'मैचिंग' रंग नहीं है तो आप नाटक लिखने के पीछे क्यों पड़े हैं! बिना स्टूडियो के आप सफल नाटक नहीं लिख सकते।

क्या कहा आपने, आप व्यंग्य लिखना चाहते हैं! तो, आप सड़क पर आ जाइए, घर में बैठकर व्यंग्य नहीं लिखे जाते। सड़क पर आपको लोग-लुगाई, पशु-पक्षी, चोर-पुलिस सब आते-जाते दिखेंगे। लफंगों और सुलफंगों से भी आपका पाला पड़ेगा। आप निर्लिप्त रहें। सबको देखें और ऐसे देखें कि किसी को न लगे

कि आप उन्हें देख रहे हैं। आप किसी को मोह से देखते हैं तो प्रेमी बन जाते हैं और निर्मोही बन कर देखते हैं तो व्यंग्यकार। व्यंग्य लेखन में दिमाग नहीं लगता, आँखें लगती हैं। क्या लाग-लपेट और क्या दुराव-छिपाव! सब अपने ही हैं और अपने हमाम में सब नंगे हैं। जो देखें उसे ठोकते-बजाते रहें और लिखते रहें। बस एक बात का ध्यान रखें। अपने परिवेश को ठोक-बजाकर आपको परसाई बनना हो तो टाँग टूटने का खतरा भी है। वास्तु के हिसाब से सड़क ही व्यंग्यकार के लिए मुफीद है। कबीर ने भी कहा है, कबीरा खड़ा बजार में...

जल बिन मछली और सम्मान बिन साहित्यकार का क्या जीवन! तड़प-तड़पकर मरणासन्न होने की बजाय अपनी सम्मान लालसा को अदमित बनाए रखें। डायरी में अपनी पहली हस्तलिखित कविता को देखकर जो कवि बुकर-पुरस्कार की कामना न करे तो उसके कविधर्म पर लानत है। यदि आप उम्रदराज हो गए हैं और आपके नगर की अल्पविकसित संस्था ने आपको मानपत्र नहीं दिया तो इस वास्तु फंडे को अपनाएँ। अपनी मनपसंद फ्रेम खरीदकर लाएँ और उसमें मानपत्र की खाली जगह में दो-दो हजार रुपये के नोट श्रद्धानुसार लगाकर पीछे का गत्ता ठीक से बंद कर दें। इस फ्रेम को अपने स्नानगृह के द्वार की भीतरी साइड में लगा दें। इसे केवल ग्यारह दिन तक यहाँ लगाकर उस संस्था को भेंट कर देने से आपकी मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी। यदि आपको लगता है कि साहित्य की ठेकेदार संस्थाओं ने आपको सम्मानित नहीं किया तो उन्हें 'प्रसीद-प्रसीद' यानि प्रसन्न करने का भी वास्तु उपाय है। एक सफेद गत्ते पर काली स्याही से बड़े-बड़े अक्षरों में उस संस्था का नाम लिखें और गत्ते को एक मजबूत रस्सी में पिरोकर हार का स्वरूप दे दें। अब आप किसी कुम्हार या धोबी से उसका गधा ग्यारह दिनों के लिए किराए पर ले आएँ। इस गधे को अपने निवास के मुख्य द्वार के पास बांध दें और गत्ते का हार उसे समारोहपूर्वक पहना दें! ग्यारह दिन का समय तो अधिकतम है, आपका काम चार छह दिन में भी बन सकता है। ये अनुभवसिद्ध और गारंटीड उपाय हैं। आपको नोबेल पुरस्कार चाहिए तो आप गत्ते पर अंग्रेजी में 'टू – स्वीडिश एकेडमी, नोबेल प्राइज इन लिटरेचर' लिखकर, नीचे अपना पूरा नाम, पता और मोबाइल नंबर लिख दें। गत्ते के हार सहित इस गधे को आपको स्टाकहोम-स्वीडन भेजना पड़ेगा। गधे के लिए पासपोर्ट, वीज़ा, एयर टिकट आदि बनाने के नियम अब तक नहीं बने हैं, इसलिए इस उपाय को हम 'सिद्ध और अचूक' नहीं कह सकते। पर आप इसे जरूर करें, आपकी मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी और यदि पूर्ण नहीं भी हुई तो आप इतने प्रसिद्ध हो जाएँगे, जितने नोबेल पुरस्कार मिलने पर भी नहीं होते।

डाँडिया का असली रंग

डॉ. मुकेश असीमित
drmukeshaseemit@gmail.com

भाग-1

शहर में डांडिया उत्सव का बुख़ार अपने चरम पर है। नवरात्रि के नौ दिन मानो मस्ती और धमाल के ऐसे तेवर लिए हुए हैं कि तापमान गरमी के नौ तपों से भी कहीं अधिक प्रतीत हो रहा है। कई संस्थाएँ तो केवल डंडे बजाने के लिए ही अस्तित्व में आई लगती हैं। बाज़ार सज चुके हैं - डांडिया और गरबा के रंग-बिरंगे सामान से। जितना गरबा गुजरात में पूरे नौ दिन में खेला जाता है, उससे कहीं अधिक तो हमारे शहर में एक ही दिन में खेल लिया जाता है।

पुरुषों ने दीवाली की साफ़-सफ़ाई को कुछ दिनों के लिए आगे खिसका दिया है, बिलकुल उसी तरह जैसे दफ़्तर में रखी बिना सिफ़ारिश वाली फ़ाइल को कोने में सरका दिया जाता है। महिलाओं ने झाड़ू-बर्तन छोड़ दिए हैं और डांडिया पकड़ लिए हैं। पति जैसे प्राणी भी पत्नियों के साथ ताल में ताल मिलाकर डंडे बजवा रहे हैं... जी हाँ, 'बजवा' रहे हैं - बजाने की तो क्या मजाल!

होली की मादकता से कहीं अधिक गरबा अपने जवां, गबरीले जोश से दिल बहला रहा है। अपनी जासूसी खिड़की से पड़ोसी शर्मा जी को देख रहा हूँ। सुबह-सुबह वे अपनी पत्नी के साथ डंडे बजाने में व्यस्त हैं। आज तो मेरा अख़बार भी उधार ले जाना भूल गए। शर्मा जी ठहरे कंजूस प्रवृत्ति के, इसलिए डांडिया खरीदने की बजाय बेलन से काम चला रहे हैं। और उनकी पत्नी - बेलन चलाने में तो वैसे भी माहिर हैं... मेरी नहीं... जी, ऐसा 'मेरी वाली' ने कहा है लिखने को। मेरा लिखा पहले संपादक के पास नहीं, बल्कि मेरी पत्नी की कैंची की धार से होकर गुज़रता है। कुछ अनचाहे, मनगढ़ंत, फिज़ूल की तुर्रमख़ाँ शब्दावली पर बाद में डाँट न पड़े, इसलिए पहले ही काम हल्का कर लेता हूँ। ख़ैर, बात हो रही थी शर्मा और शर्मिन की - दोनों का कोऑर्डिनेशन बड़ा शानदार है। शर्मा जी के हाथ में भी बेलन है, लेकिन यहाँ वह ढाल का काम कर रहा है।

शहर की पुलिस भी इन दिनों कुछ ज़्यादा ही डांडिया खेलने के मूड में है। ट्रैफ़िक का चौराहा हो या सब्ज़ी मंडी का नुक्कड़ - जहाँ भी मौका मिले, पुलिस वाले भी डांडिया का रंग जमा ही देते हैं। हमारे पास भी एंट्री पास आया है - कूपन का हज़ार रुपये भुगतान करना पड़ा। जुगाड़ तो वीआईपी पास का कर रहे थे... कई जगह पासा फेंका भी... लेकिन चला नहीं। श्रीमती जी को सौदा थोड़ा महँगा लगा, क्योंकि डंडे कुल मिलाकर साठ रुपये के हैं। डांस भी हमें ही करना था - इतने बड़े आदमी भी नहीं बने कि कोई हमारी जगह डंडे बजा दे।

खाने के मेनू का हिसाब लगाया - मुश्किल से दो सौ रुपये का खा पाएँगे। कूपन देने वाला कह रहा था (कमबख़्त बड़ा हरामी है) "इस बार आगरे की स्पेशल रसमलाई भी है, सर!"... उसे मालूम है कि मुझे डायबिटीज़ है। खैर, जले पर चीनी छिड़कने का पुराणकालीन रिवाज तो है ही! तो फिर बाकी आठ सौ रुपये? नहीं बाबा, लूट मचा रखी है... नहीं जाएँगे!

श्रीमती जी ने साफ़ मना कर दिया, लेकिन मैंने कुछ सरकारी आँकड़ों की हेराफेरी और आश्वासन की मीठी गोली देकर उन्हें मना ही लिया। बताया कि वहाँ कुछ बम्पर लॉटरी प्राइज़ भी हैं - जैसे 'बेस्ट कपल डांस',

‘लकी ड्रॉ’ - इसलिए क्यों न भाग्य आज़मा लिया जाए, शायद देवी माँ की कृपा हो जाए।

जी, पहुँच गए कार्यक्रम में। वहाँ चार मुस्टंडे अंगरक्षक हमारे स्वागत हेतु उपस्थित थे। कूपन को गौर से देखा, हमें गिना, हमारी बीबी को गिना, चार बार गिना - जब पूरी तरह आश्वस्त हो गए कि हम केवल दो ही हैं, तब भीतर जाने दिया। आयोजक मंडल मंच से कार्यक्रम के बारे में विस्तार से बता रहा था। जो बात बार-बार सुनाई दी, वो यही कि - यह सब प्रायोजकों की धनराशि की बदौलत है कि तुम भुखमरों को यह गरबा नसीब हुआ है, वरना तुम्हारी औकात नहीं थी इस गरबा में आने की!

सम्मानित अतिथियों की पूजा-अर्चना की गई... उनके प्रतिष्ठानों की आरती हुई... झालरें और शंख बजे। उद्घोषक पूरे जोश में प्रायोजकों के नाम पुकार रहे थे, मानो आवाज़ उनके घर तक पहुँचनी चाहिए, "आपका नमक खाया है, सरदार! तो बजानी तो पड़ेगी ही न!"

उद्घोषक महोदय इतने भावुक हो गए कि गला रुंध गया। नीचे खड़े लोग आयोजकों और प्रायोजकों दोनों को ही अपनी-अपनी शैली में खानदान की मात्र भगिनी एकीकरण में शामिल करने लगे। तब उद्घोषक को होश आया - गला साफ़ किया और माँ जगदम्बा की आरती के लिए अतिथियों का आह्वान किया।

देवी की मूर्ति के समक्ष अतिथि आरती कर रहे थे, ताकि कार्यक्रम विधिवत प्रारंभ हो सके। इस बीच प्रतिभागी डंडे बजाने की तैयारी में जुट चुके थे - मंच के पीछे लगी स्टॉलों पर कुछ-कुछ खा-पीकर, कुछ एडवांस में अपनी जेब में, दोने और कागज़ों में भर कर लौट रहे थे।

भाग-2

आयोजकों ने सबको गरबा खेलने के लिए आमंत्रित किया। मंच से उद्घोषणा हुई, “अब सभी प्रतिभागी मैदान में आएँ!” सब मैदान में आ चुके थे, ताल से ताल मिलाने की तैयारी में डूबे। लेकिन एक नेताजी किस्म के अतिथि महोदय कुर्सी से उठने का नाम ही नहीं ले रहे थे। उन्हें डर था कि कहीं पीछे से कोई उनकी कुर्सी खिसका न ले, या फिर कोई और उस पर विराजमान न हो जाए। बाद में पता चला कि ये दूध के जले हुए हैं जो अब छाछ भी फूँक-फूँक कर पीते हैं। दरअसल, हाल ही में ये नेताजी अपनी पूर्व पार्टी से अनुशासनात्मक कार्रवाई के चलते निष्कासित हुए हैं और अब किसी दूसरी पार्टी में जुगाड़ बिठा रहे हैं। बड़ी मुश्किल से यहाँ आयोजकों से सिफ़ारिश कर एक 'कुर्सी' मिली है, अब उसे गंवाना नहीं चाहते। अफ़वाह तो यह भी है कि इन्होंने आयोजकों से यह तक कह दिया है, "अगर गरबा में हिस्सा न लूँ, तो कम से कम यह कुर्सी तो घर तक भिजवा ही देना।"

एक अन्य अतिथि बार-बार अपना साफ़ा सँभाल रहे थे, लेकिन साफ़ा है कि सर से उतर-उतरकर उनके

चरणों में गिरता ही जा रहा था। दो बार तो वे उसे सम्मान सहित उठा भी लाए, लेकिन तीसरी बार जैसे ही झुके, किसी अति उत्साही डांडियारत प्राणी का पैर उनके हाथ पर पड़ गया। कराह उठे! साफ़े की चूनरी खुल गई, और ऐसा प्रतीत हुआ मानो अतिथि महोदय सरेआम नग्नता के कगार पर पहुँच गए हों।

कार्यक्रम में नाचते-गाते, मस्ती में डूबे कुछ रहम दिल इंसानों ने उन्हें उठाने की कोशिश की, लेकिन दृश्य देखकर चौंक उठे - अतिथि महोदय फर्श पर ही नागिन डांस की मुद्रा में नाच रहे थे! जब तक सर पर साफ़ा होता है, आदमी को अपनी इज़्ज़त संभालनी पड़ती है; जैसे ही वह सर से उतरा, आदमी की असली औक़ात खुद-ब-खुद बाहर आ जाती है। आयोजकों ने स्थिति को भाँप लिया था, लेकिन वे भी इनसे नज़रें चुराते घूम रहे थे, क्योंकि इन अतिथि महोदय से वे लिफ़ाफा पहले ही ले चुके थे।

हम भी कभी महफ़िल को, और कभी अपने कुरते की जेब में ठुँसे पड़े डांडिया स्टिक्स को देखते रहे - सोचते रहे, "बजाया जाए या नहीं?" लेकिन बजाएँ भी तो किसके साथ? जो हमें पकड़कर लाई थीं - मतलब हमारी श्रीमती जी - उन्हें उनकी सहेलियों ने पकड़ रखा था। वे वहीं व्यस्त थीं - बिलकुल संसद में विपक्ष को स्पीकर पकड़ ले, वैसा दृश्य! और उनकी सहेलियों के पति अपने-अपने डांडिया सँभालते हुए खाने की स्टॉल की ओर बढ़ चुके थे, ताकि कूपन के कुछ पैसे कैश कर सकें। मैं मायूसी से अपनी डांडिया स्टिक्स देख ही रहा था कि तभी एक संपादक महोदय दिखे। उनके साथ चार लेखक भी थे, जो उनके साथ गरबा खेलने की असफल कोशिश कर रहे थे। संपादक महोदय कुछ खिन्न से लग रहे थे, जैसे गरबा उन्हें सृजनात्मक विपत्तियों का केंद्र लग रहा हो। सभी लेखक उन्हें अपने डांडिया दिखा रहे थे। वे डांडिया को हाथ में लेकर देखते, परखते और फिर लौटा देते — “खेद है...” की मुद्रा में। मैंने भी अपनी डांडिया स्टिक्स उन्हें दिखाई, लेकिन उन्होंने दूर से ही हाथ हिलाकर कहा, “खेद है, मैं नहीं खेल पाऊँगा!”

उधर कई डॉक्टर भी मौजूद थे, जो मुझसे कहीं बेहतर डॉक्टरी करते हैं। लेकिन वे डांडिया बीच में ही छोड़ चुके थे। कुछ तो मजबूरी में, कुछ आदतन, किसी का घुटना, किसी की जुबान, किसी का गला, तो किसी की कमर जाँचने में लग गए थे। वहीं खड़े-खड़े वे पेपर-नैपकिन पर दवाइयाँ भी लिख रहे थे, जो बाद में गरबा नृत्य की पसीने भरी बूंदों के साथ बहते-बहते लोगों के गालों पर चिपक जा रही थीं।

कुछ अवसरवादी मरीज नाराज़ भी दिखे। उन्हें लग रहा था, "डॉक्टर लोग यार, इतना भी मेडिकल एथिक्स नहीं रखते! पहली बात तो ये कि डांडिया कोई डॉक्टरों के खेलने की चीज़ है क्या? और चलो आ भी गए तो इन्हें डांडिया स्टिक पकड़ते हुए शोभा देता है क्या? इन्हें तो अपना आला (स्टेथेस्कोप) साथ लाना चाहिए था।" आख़िरकार, एक डॉक्टर, हमेशा डॉक्टर ही होता है।

शहर की पुलिस भी वहाँ मौजूद थी, हालाँकि उन्हें कार्यक्रम में औपचारिक रूप से आमंत्रित नहीं किया गया था। वे कानून-व्यवस्था बनाए रखने के लिए उपस्थित थे - या शायद यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई कानून हाथ में न ले... ताकि वे भी डांडिया खेल सकें।

कुछ नवयुवक भी नज़र आए, जो कुर्ता-पायजामा जैसे पारंपरिक वस्त्रों में फँसे हुए लग रहे थे -जबरन गरबा के इस जाल में धकेले गए। उनमें से ज़्यादातर की गोद में बच्चे थे, बिलकुल होमली फीलिंग का अनुभव कर रहे थे। उनके डांडिया स्टिक्स उनके बच्चों ने पकड़ रखे थे, जो इन पापा जैसे प्राणियों के गालों पर डंडा बजाकर कह रहे थे, ‘हैप्पी डांडिया पापा!” और उनकी पत्नियाँ? वे तो पंडाल में दूसरों के गालों

पर डांडिया बजा-बजाकर हैप्पी डांडिया खेल रही थीं!

भाग-3

अब तक इस रणभूमि में डांडिया लेकर कूदने का सारा जोश हमारा काफ़ूर हो चुका था। हमने अपने डांडिया फिर से अपने कुरते की तूणीर में खोंस दिए। इतने में पड़ोस के शर्मा जी आ गए। बोले, “गर्ग साहब, कैसे यूँ चुपचाप खड़े हो?” मैंने सहजता से कहा, “नहीं... मुझे खेलना आता नहीं है।” इससे पहले कि शर्मा जी कोई और करुणा-भरा संवाद बोलते, मैंने एक दूसरा प्रश्न दाग दिया — ठीक निशाने पर, “अरे! आप तो रोज़ प्रैक्टिस करते हैं, फिर क्यों नहीं खेल रहे?”

वो बोले, “गर्ग साहब... डांडिया तो चलता रहेगा... इसमें कुछ नहीं रखा। सब इन आयोजकों का घालमेल है... ये तो साल भर की दाल-रोटी निकाल लेते हैं एक ही आयोजन में। वो देखो, अभी खाने की स्टॉल थोड़ी खाली है। बाद में यहाँ भीड़ हो जाएगी। डांडिया का क्या है... घर पर ही बचा-खुचा खेल लेंगे। लेकिन अगर खाना नहीं मिला, तो फिर घर पर तो मिलने से रहा... ये तो पक्का है। चलिए, आप भी चलिए।”
मैंने विनम्रता से उत्तर दिया, “नहीं... आप खा लीजिए। मुझे श्रीमती जी का इंतज़ार करना है। साथ ही खा लेंगे, बस थोड़ी ही देर में वो फ्री हो रही हैं।”

फिर उन्होंने अपने डांडिया मुझे पकड़ाते हुए कहा, “थोड़ी देर मेरे डांडिया संभाल लेना।” मैंने उनके डांडिया एक कुर्सी के पास रख दिए और वहीं खड़ा हो गया। थोड़ी देर में देखा तो दस और लोग अपने-अपने डांडिया लेकर चले आए। दरअसल वे भी कोई मुझ जैसा ही निठल्ला प्राणी ढूँढ रहे थे, जो उनके डांडिया संभाल सके। अब दृश्य ऐसा बन चुका था मानो मंदिर के बाहर जूते-चप्पल रखने का स्टॉल खोल लिया हो। बस एक ही डर था, कोई टोकन व्यवस्था नहीं थी।

कल को यदि किसी के डांडिया किसी और के हाथ में दिख गए, तो मेरे ऊपर डांडिया गबन का संगीन आरोप लग सकता है! हो सकता है आयोजक मेरे विरुद्ध कोई जांच समिति बिठा दें, ईडी या सीबीआई जैसी कोई संस्था। वैसे भी, ये दोनों कब किसे धर-पकड़ लें, कहना मुश्किल है।

कुछ समय बाद आयोजक भी अतिथियों को निपटाकर पंडाल में कूद पड़े। सभी कैमरों की निगाहें, जो अब तक केवल और केवल महिला शक्ति पर केंद्रित थीं, अब आयोजकों की ओर मुड़ गईं। आखिर भुगतान तो आयोजकों से ही लेना था, सौंदर्य दर्शन एक ओर... धंधा दूसरी ओर। इसी बीच एक आयोजक महोदय का डांडिया किसी महिला के वस्त्रों के भीतर ऐसी जगह जा घुसा, जिसका वर्णन इस साहित्य को थोड़ी अलग दिशा में ले जाएगा... वैसे आप समझदार हैं, आप समझ ही गए होंगे... साहित्य में क्षेपक डालना ज़रूरी तो नहीं, है न?

बड़ा हल्ला-गुल्ला मच गया। थोड़ी ही देर में डांडिया की इस कारस्तानी की खबर पूरे पंडाल में आग की तरह फैल गई। अब सभी लोग अपने-अपने डांडिया छोड़कर उस फँसे हुए डांडिया को निकालने में जुट गए। किसी ने सलाह दी, “लाइट बंद कर दो !” तुरत-फुरत लाइट बंद की गई। तब जाकर कहीं डांडिया सुरक्षित रूप से निकाला गया। पर अंधेरे का फ़ायदा उठाकर कुछ शरारती तत्वों ने यहाँ-वहाँ जहाँ भी मौका मिला, हाथ साफ़ कर लिया। अंधेरे में ही... "चाटाक्क्क!" "पटाक्क्क!"... की आवाज़ें गूँजने लगीं। जैसे

ही लाइट जली, तो पता चला कि दो गुट बन चुके हैं, और पूरे मैदान में असली डांडिया शुरू हो चुका है। अब डांडिया केवल स्टिक से नहीं, बल्कि हाथ, पैर, मुँह, फर्नीचर, माइक, कैमरा, माला... जिसे जो हाथ लगा या कबाड़ा जा सकता था, उसी से डांडिया शुरू कर दिया गया। पुलिस वालों ने भी मौके का लाभ उठाते हुए अपने डंडे चलाने शुरू कर दिए। अब... असली डांडिया का मज़ा आ रहा था! मुझे मजबूरी में डांडिया स्टिक्स की रखवाली छोड़नी पड़ी, क्योंकि तब तक डांडिया और उसके ऊपर रखी कुर्सी मैदान-ए-जंग में जा चुकी थी।

अब मैं अपनी श्रीमती जी को ढूँढ रहा हूँ... और स्टाफ़ को कह दिया है कि एक ब्रेड का पैकेट ले आए। क्योंकि अगर घर जाकर श्रीमती जी से कहूँगा — "कुछ बना दो..." तो जो डांडिया फिर घर पर चलेगा, उसका मुकाबला तो यहाँ वाला डांडिया भी नहीं कर सकेगा!

◇·····◇

“स्त्री, स्त्री होने के सिवा मनुष्य भी तो है”

अनामिका से रेखा सेठी की अंतरंग बातचीत – भाग 1

प्रो रेखा सेठी
दिल्ली विश्वविद्यालय के इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय में प्रोफ़ेसर, 'वातायन' की स्मृति संवाद शृंखला की समन्वयक
reksethi@gmail.com

समकालीन हिंदी साहित्य में अनामिका ने जो अपनी जगह बनाई, उसकी आधारभूमि स्त्रीवादी लेखन से निर्मित है। स्त्री चिन्तन और लेखन की भारतीय तथा वैश्विक परम्पराओं का अवगाहन कर, वे बहनापे के नए-नए संबंध स्थापित करती रही हैं। व्यापक मानवीय सहानुभूति से जुड़ी होकर भी उनकी रचनाएँ एक ख़ास स्त्रीवादी मुहावरे में लिपटी रही हैं। ‘स्त्रियाँ’, ‘दरवाज़ा’, ‘बेजगह’ जैसी कविताएँ स्त्री-विमर्श की युगीन साहित्यिक अभिरुचि के अनुकूल थीं। विचारधारा के स्तर पर ‘स्त्रीत्व का मानचित्र’ लिखकर वे अपनी साहित्य-दृष्टि की उद्घोषणा पहले ही कर चुकी थीं। इस पृष्ठभूमि में स्त्री-कविता के अर्थ-आशय समझने के लिए प्रस्तुत है, रेखा सेठी से उनकी लम्बी बातचीत .....

रेखा सेठी: आपके निकट स्त्री–कविता का आशय क्या है?

अनामिका: स्त्री-शरीर, स्त्री-मन, स्त्री–भाषा और स्त्री दृष्टि प्रकृत्या अलग हैं। जीव-सम्बन्धी वैज्ञानिक शोधों के अद्यतन निष्कर्ष ये बताते हैं कि ‘वाई फैक्टर’ की अनुपस्थिति तर्कातीत संज्ञान-जगत के प्रति स्त्री-एंटीना को अधिक सजग रखती है। माफ़ कर सकने की, एक साथ बहुतेरे काम सँभालने की, गिरा हुआ मनोबल जगाने की क्षमता स्त्रियों में अधिक होती है। इस तरह से देखा जाए तो बोउआर का यह कथन कि ‘स्त्री पैदा नहीं होती, बना दी जाती है’ में आंशिक परिवर्तन किया जा सकता है। परिवेशगत दवाब नैसर्गिक गुणों का रेखांकन कर सकते हैं और छिपी हुई सम्भावनाओं का अतिरेकपरक दोहन भी। ज़रूरत इस बात की है कि लज्जा, सहिष्णुता, धीरज, प्रेम, सहकारिता आदि सद्गुण सिर्फ ‘स्त्रीधन’ न माने जाएँ, स्त्रियों का इन पर एकाधिकार न रहे, बेचारे पुरुषों में भी बराबर बँटे ये जैसे कि भौतिक साधन और कुछ कर गुजरने के अवसर स्त्रियों में। परिवेश का महत्व सिर्फ इतना है कि वह स्त्रियों को अति-स्त्री और पुरुषों को अति-पुरुष न बनने दे। स्त्री-कविता अपने भाषा–जल से यही अतिरेक धो डालने को रलमल बही जाती एक नदी है। मगर जब मैं यह कह रही हूँ तो यह बात ध्यान में रखते हुए कि नदियाँ इसलिए नहीं बहती कि उनको कुछ प्रक्षालित करना है या अपने तट पर सभ्यताएँ बसानी हैं। वे तो अपनी मौज में ही बहती हैं। बाकी जो होना है, यों ही हो जाता है।

रेखा सेठी: स्त्री होना आपकी कविता को कैसे प्रभावित करता है?

अनामिका: स्त्री-शरीर में कामना की ग्रंथियाँ हर तरफ माधवी-लता की तरह प्रस्फुटित रहती हैं, पुरुष-शरीर की तरह एक अंग में उनकी उर्जा मीलित नहीं रहती। आँखों का पानी, आँचल का दूध और कामना का सोमरस - तीन धाराएँ हैं जो उनकी भाषा के रोम-रोम में आनन्दातिरेक का प्रवेग भरती हैं। दुःख भी आनन्द का सोता हो जाए, तभी कोई रोते-रोते गा सकता है, स्त्री-जगत की यह स्थिति आम है। दुःख-सुख

उच्छल भाव से साझा करने की यह वृत्ति ही स्त्री-भाषा को अद्भुत प्रवाह देती है।

पुरुष-अभिव्यक्ति इतनी अकुंठ और उच्छल नहीं हो पाती, इसके कुछ कारण तो उनकी देह में हैं, कुछ पालन-पोषण में। नैंसी शोदोराव नामक मनोभाषाविद के शोधपत्र स्पष्ट करते हैं कि दो-तीन साल की उम्र में ही अपनी सबसे प्रिय 'शै' माँ की गोद से खींचकर 'पितृछवि' में उसे ढालने की ज़बरदस्ती ही लड़कों के मन में वह गम्भीर चोट दर्ज कर देती है जिसके कारण वे कोमल भावनाएँ छुपाने लगते हैं। क्रोध का सार्वजनिक प्रदर्शन उन्हें शर्मनाक नहीं दिखता, पर स्नेह की सार्वजनिक अभिव्यक्ति उन्हें पुरुषोचित नहीं जान पड़ती। इसी दबाव में उनकी भाषा के डैने धीरे-धीरे मुंदने लगते हैं।

स्त्री-शरीर में पैदा होना इस मायने में तो मेरा सौभाग्य है कि मेरी भाषा को भेदभाव नहीं झेलने पड़े, पर जिस समाज में मैं जी रही हूँ उसमें स्त्री-शरीर, स्त्री-सम्बन्धी सारे अपराधों की आधारभूमि भी है - यह कैसे भूलूँ। इस उम्र में भी मैं पेड़ के नीचे लेटकर गीत नहीं गा सकती, जहाँ चाहूँ अकेली जा नहीं सकती, किसी से मिलने जाने के पहले अच्छा-खासा होमवर्क करना पड़ता है, यह पता लगाने का कि बंदा भेड़िया-टाइप या ज्यादा लट-पट करनेवाला तो नहीं है। (भला हो बहनापे का कि, अब यह बात जल्दी ही पता चल जाती है, बहुत शोध नहीं करना होता)

इस एक दुःख के सिवा मुझे कोई दुःख नहीं स्त्री-शरीर में बाकी सब आनन्द है। अनजान से अनजान व्यक्ति से भी अकुंठ भाव से बतिया सकती हूँ... कम–से-कम पब्लिक स्पेस में... कोई मनोवैज्ञानिक बाधा नहीं होती, किसी की मन:स्थिति–परिस्थिति में गोता लगाते हुए। मन:स्थिति–परिस्थिति का साक्ष्य हो जाए अंतरंग गपशप में तो किसी को माफ़ करना, उसका मनोबल जगाना भी आसान हो जाता है। सहज प्रेम का सोता निर्बाध बहता है मन में।

रेखा सेठी: क्या यह आवश्यक है कि स्त्री-कविता की अपनी अलग पहचान हो?

अनामिका: कहन-शैली और भाषा के तेवर में ज़मीन-आसमान का फर्क जहाँ हो, एकदम नए बिम्ब, नए तरह के चरित्र, नई गठन के वाक्य-विन्यास, अधिक अनौपचारिक और अंतरंग तेवर में बात कही जा रही हो - मूल्यांकन के मानदण्ड तो बदलेंगे ही।

युद्ध, दंगा, विस्थापन, भूमंडलीकरण, बेरोज़गारी, घर, प्रेम, बुढ़ापा, मृत्यु, बहनापा, भाईचारा, इतिहास - विषय वही हैं पर ट्रीटमेंट स्त्री-कविता में अलग है - भाषणधर्मिता का स्थानापन्न सहज संवादमयता हो जाती है, पूर्णविरामों और आदेशमूलक वाक्यों का सहज स्थानापन्न अल्पविरामों, विस्मयमदिबोधक और प्रश्नबोधक वाक्य। समुच्चयबोधक चिह्नों का उपयोग भी अधिक तरल और हँसमुख-सा लगता है। कोई अलग हो तो बिना प्रकट रणनीति के भी अलग ही पहचाना जाता है।

रेखा सेठी: स्त्री-कविता जैसा अभिधान क्या केवल पाश्चात्य सन्दर्भों से अनुप्रेरित है या भारतीय-दृष्टि भी उसके निर्माण का आधार है?

अनामिका: स्त्री-कविता का सबसे बड़ा योगदान यही है कि उसने एक चटाई बिछाई है और पर्सनल-पोलिटिकल, कॉस्मिक-कॉमनप्लस, में माइक्रो-मैक्रो, इहलोक-परलोक, इतिहास और मिथक, शास्त्र और लोक, पौर्वात्य और पश्चिमी के बीच का पदानुक्रम तोड़कर उन्हें एक चटाई पर बिठाया है। हमें जिधर से ताज़ा हवा मिलेगी - हम उधर से खिड़की खोलेंगे। एशियाई दर्शन और प्रपत्तियाँ, अफ्रीकी लोक,

ऑस्ट्रेलियन एबोरिजन्स का लोक, अमरीकी-यूरोपीय उद्योग, लातिन अमरीकी लोक - सबका सार हम चलनी से चालकर, सूप से फटककर समदुख-योगियों के बृहत्तर हित साधने का सपना दिखाने वाले समवेत गीत गाएँगे, कविताएँ लिखेंगे। यही है बहनापा। यही है मध्यममार्ग।

स्त्री-कविता या स्त्री-दृष्टि पर पश्चिमी प्रभावों के अतिरेक का अभियोग लगाने वालों को यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए कि 'कोलोनियल' और 'कैनोनिकल' दोनों पर पहला प्रहार इसने ही किया, इसी ने पहली बार घरेलू चिट्ठी-पत्री और अंतरंग देशी दस्तावेज़ों को ज्ञान-प्रत्याख्यान के प्रामाणिक स्रोत के रूप में मान्यता दिलाई और अपने सर्जनात्मक लेखन में इनका भरपूर उपयोग किया।

रेखा सेठी: आपकी दृष्टि में स्त्री-कविता के मूल मुद्दे क्या हैं?

अनामिका: कविता कोई मुद्दा लेकर नहीं चलती, वह अपनी मौज में उमड़ पड़ती है, ठीक वैसे ही जैसे नदी अपनी नैसर्गिक रवानी में बह निकलती है। वह इसलिए नहीं बहती कि उसके तट पर सभ्यताएँ बसें, पर यह भी एक बड़ा सच है कि उसके तट पर सभ्यताएँ बस ही जाती हैं। ठीक इसी तरह कविता लिखते या पढ़ते हुए अच्छाई आपकी हड्डियों में फूल की तरह चटक ही जाती है। पर याद रखने की बात यह है कि अच्छाई कविता का बाइप्रोडक्ट है।

कविता लिखते समय कोई कमर नहीं कसता कि पढ़ने वाले का मनोवैज्ञानिक परिष्कार करके रहेंगे, उसकी ग्रंथियाँ मिटाकर रहेंगे। जैसे एक सुलझे हुए व्यक्ति के पास बैठकर पेड़ की छाया में बैठने का एहसास होता है और वृत्तियाँ अपने-आप ही शांत हो जाती हैं, वैसे ही सुलझी हुई, समझदार रचना एक कौंध में आपका मर्म कुछ ऐसी छूती है कि कम-से-कम कुछ देर खातिर आपकी वृत्तियाँ शांत हो जाएँ और बाद तक भी जब-जब स्मृति में वह कौंधे, आपका संवेदन जग जाए, आप मनुष्येतर हो जाएँ।

रेखा सेठी: यदि आपकी कविताओं के सन्दर्भ में बात करें तो वहाँ स्त्री की बात करते ही इतिहास, परंपरा और मिथक के कई पन्ने एक–साथ खुल जाते हैं यानी स्त्री–अनुभव बहुत ही पेचीदा और संश्लिष्ट होता है। आपके लिए कविता में इसे साधना कितना श्रमसाध्य है?

अनामिका: इतिहास तो प्रशासन द्वारा प्रायोजित हो सकता है, उसमें कतर-ब्योंत भी हो सकती है, किन्तु लोक-परम्पराएँ और मिथक जातीय अवचेतन की ऐसी दराज़ हैं जिसमें आप ज़बरदस्ती न कुछ ठूंस सकते हैं, न उससे कुछ निकाल सकते हैं। इसी एहसास के साथ उत्तर–संरचनात्मक अध्ययन लोकस्मृति को ज्ञान–मीमांसा के विश्वसनीय स्रोत के रूप में स्वीकारने लगे हैं। वाकफियत के इस सिद्धांत से बहुत पहले ही मेरा जीवन लोकाख्यानों के आलोक में जीवन की गाँठे खोलने में एक अजब तरह का सुख पाने लगा था। मेरी ददिहाल और ननिहाल - दोनों में अलग-अलग भाषिक प्रदेशों की दुल्हनें आई थीं और उनके साथ उनके दहेज में आई सच्ची 'हवा की मिठाइयां' थीं वे अनंत गाथाएँ जो 'ब्लैक–आउट' के दिनों में घर में बच्चों को अत्यंत रहस्यमय बनाकर रात-दर–रात सुनाया करती थीं।

इस पूरी प्रक्रिया ने मुझे बहुत-बहुत समृद्ध किया और जब आज कुछ भी लिखने बैठती हूँ तो 'खुल जा सिमसिम' भाव से अक्षयनिधियों वाली अंतर्गुहा का मुँह खुलता ही जाता है, और जीवन की प्राय: सब उलझनें, सब गाँठे इनके आलोक में खुलती जाती हैं... वे चरित्र, वे प्रसंग और मोटिफ़ नई जमीन पर प्रत्यारोपित करते हुए धानरोपनी करने वाली किसनिनों-सा मन गाने लगता है।

रेखा सेठी: पिछले बीस वर्षों में - कविता, गद्य और शोध - सभी क्षेत्रों में स्त्री-कविता और स्त्री-विमर्श आपके चिंतन के केंद्र में रहे हैं। आपने अंग्रेज़ी में भी स्त्री लेखन का संकलन संपादित किया और एक तरह से हिंदी में स्त्री विमर्श को विश्व वातायन से जोड़ने का कार्य किया। इसके पीछे आपकी क्या दृष्टि रही?

अनामिका: मेरे मन में यह रहता है कि पूरब और पश्चिम में जो भी साझा है, उसके बीच एक पुल बना दूँ। सोचने में भी मुझे लगता है कि यह दुनिया और वह दुनिया कैसे जुड़ जाए झपाके से... वहाँ सखी भाव से आपसी गपशप होती रहे। मैं चाहती हूँ कि सबका सबसे अंतरंग बातचीत वाला रिश्ता बने और अगर उसे जोड़ने में मैं पुल बन सकती हूँ तो मुझे अच्छा लगता है।

रेखा सेठी: लेकिन क्या आपको लगा कि इससे एक समस्या भी पैदा हो गई, स्त्रीवादी मुहावरा आपकी कविताओं की पहचान बन गया। यहाँ तक कि स्त्री विमर्श की स्थापनाओं पर आपकी कविताओं के उदाहरण चुन-चुनकर चस्पां कर दिए गए। इससे आपकी रचनाओं का स्वतंत्र मूल्यांकन बाधित होता है। क्या आपको भी ऐसा लगता है?

अनामिका: इस तरह से मैंने अपनी कविताओं के बारे में सोचा नहीं लेकिन जो भी मैं देखती हूँ, स्त्री तो मैं हूँ ही, स्त्री की आँख से संसार भी देखती हूँ और स्त्री कविता के बारे में भी मेरा यही नज़रिया है कि व्यक्ति का लोकेल कहीं भी हो उसकी आँखें तो अपने आस-पास के पूरे संसार को देखती हैं, जैसे पेड़ का तना - अपने होने के वजूद में एक जगह स्थित होकर भी उसकी टहनियाँ बाहें फैलाकर बाहर की ओर जाती हैं। व्यक्ति भी भीतर अपने वजूद में स्थित होकर बाहर की ओर देखता है। मैंने भी केवल स्त्रियों को ही देखा हो ऐसा नहीं है। मैंने वृहत्तर संसार को देखने की कोशिश की है, स्त्री दृष्टि से। यह सब जान कर नहीं हुआ, ऐसा कैसे हुआ यह तो आलोचना ही बताएगी। मुझे नहीं मालूम मैं तो जैसी थी वैसी ही रही लेकिन देखने की खिड़की वह हो गई, क्योंकि वह ऐसा समय था जब स्त्री स्वर को लोग अलग से देख रहे थे, पहचानने की कोशिश कर रहे थे उसी तरफ से यह खिड़की खुली होगी। इस बारे में मैंने कोई सचेत प्रयास नहीं किया।

रेखा सेठी: आपकी कविताओं में अनुभव का दायरा बहुत बड़ा है - परिवार, संबंध, प्रकृति, परंपरा, विश्व-साहित्य लेकिन सब कुछ स्त्री अनुभव पर आकर केंद्रित हो जाता है, इस विषय में आपका क्या कहना है?

अनामिका: उड़नछू निगाह से कुछ भी देखना स्त्री-स्वभाव में नहीं है। वह जो देखती है, सुनती है और भोगती है - अपनी पूरी इयत्ता के साथ। इसलिए उसकी स्मृति अधिक गहरी होती है और वर्षों तक जीवन्त। शुरू में जब स्त्रियाँ असुर्यम्पश्याएँ थीं या घर की सरहदों में कैद - उस समय भी घर की खिड़की से बाहर का जितना संसार दिखता था, उसे हृदयंगम करती हुई, कढ़ाई-सिलाई-बुनाई के फलक पर, अल्पना में, मेंहदी में, भित्ति-चित्रों पर उसकी पूरी विवरणिका दर्ज कर देती थीं। मेरी नानी की दीदी ने, जो बाल-विधवा के रूप में जीवन भर चरखा ही कातती रहीं, एक ऐसी चादर काढ़ी थी जिसमें भाइयों-देवरों के मुँह से सुने हुए विश्व-युद्ध के किस्से उत्कीर्ण थे।

हर व्यक्ति जानता है कि शुरू के पंद्रह-बीस सालों से जुड़ी स्मृतियाँ आपके जीवन का फिक्स्ड डिपोज़िट होती हैं, और स्त्री-जीवन की विडम्बना यह कि शुरू के ये साल जिस परिवेश में बीतते हैं, अचानक वह

परिवेश छुड़ाकर किसी अनजान परिवेश में हाँक दिया जाता है। इसलिए अक्सर दुष्यंत के रथ की पताका की तरह स्त्री-साहित्य उलटी दिशा में ही फहराता जान पड़ता है। कमोबेश मेरे लिए भी यह बात सच है, किन्तु हल्के सुधार के साथ। ब्याह कर कहीं और जाने के पहले मैं हॉस्टल आई - बिहार से सीधा दिल्ली जहाँ एक-एक कमरे में एक-एक ज़िन्दा कहानी रहती थी - कोई हॉरर स्टोरी, कोई रूमानी गाथा... अलग-अलग परिवेशों से अलग-अलग राजनीतिक-सामाजिक-पारिवारिक संताप झेलकर आई लड़कियाँ। उन्हीं से अंतरंग गपशप के क्रम में मेरा संसार खुला, पर रही मैं ज़्यादा स्त्रियों के पास ही - बचपन में संयुक्त परिवार की स्त्रियाँ, यहाँ हॉस्टल की लड़कियाँ - तो युद्ध, दंगे आदि भी स्त्री लेंस से देखने का अभ्यास हो गया।

अगले अंक में जारी...

◇·····◇

छन्द-सलिला: रोला

प्रो. मधु चतुर्वेदी
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय के सांस्कृतिक प्रकोष्ठ की अध्यक्ष
madhuchaturvediauthor@gmail.com

छन्द-सलिला में आज प्रस्तुत है, रोला छन्द का सृजन विधान।

साथियो, यह भी दोहा की तरह एक अर्ध सममात्रिक छन्द है। दोहे की भांति इसमें भी दो पंक्तियों में चार चरण होते हैं और दोनों पंक्तियों में चौबीस-चौबीस मात्राएं होती हैं। पर दोहे में जहाँ प्रथम व तृतीय चरण में तेरहवीं मात्रा पर यति और द्वितीय व चतुर्थ चरण में ग्यारहवीं मात्रा पर विराम होता है, वहीं रोला में मात्राक्रम दोहे के ठीक विपरीत होता है। अर्थात रोले के प्रथम व तृतीय चरण में ग्यारहवीं मात्रा पर यति और द्वितीय व चतुर्थ चरण में तेरहवीं मात्रा पर विराम होता है और वहीं तुकान्त भी।

आप पूर्व में ही दोहे के विधान से परिचित हैं अत: रोला को समझने में आपको कोई कठिनाई नहीं होगी। नीचे, रोला छन्द के दो स्वरचित उदाहरण प्रस्तुत हैं। आशा है इससे नव-सृजनकारों को इस का सृजनविधान सरलता से ग्राह्य होगा।

है नयनों में नीर, हृदय है आग बसाए।
आग बढ़ाए चाह, नीर ही धीर बंधाए।।

गौरी ताके राह, मिलन की आस लगाए।
जब लीं आँखें मूँद, हिये में प्रियतम पाए।।

आशा है आप सभी को रोला का रचना-विधान ठीक से समझ आया होगा। मिलते हैं अगले अंक में एक और छन्द के रचना-विधान के साथ! तब तक के लिए अनन्त मंगल कामनाएं!!

रोमन लिपि में हिंदी

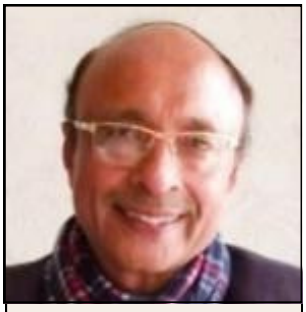

डॉ. अशोक बत्रा
सेवानिवृत्त प्राचार्य
ashokbatra.ashok@gmail.com

लोग 'हिन्दी' को 'हिंदी' लिखते हुए सकुचाते हैं। कहते हैं, हमें 'हिंदी' में वह फ़ील नहीं आती। तो सोचिए, जब 'ऋषि' 'रिशि' की तरह दिखता है तो कैसा लगता होगा! लगता होगा न, जैसे किसी लम्बी दाढ़ी वाले ऋषि ने क्लीन शेव करा ली हो और बाइक पर जा रहा हो। और 'ऋतु' - इसे देखकर जो सुहावनी हवाएँ चलती हैं और रिमझिम बारिश होती है, वह 'रितु' शब्द में रीत जाती हैं। कोई समीर नहीं, कोई स्पंदन-सिहरन नहीं। सोचिए, जब लिपि का हल्का-सा परिवर्तन अनुभूति और मनोभाव को, उसकी अंतर्भावना को बदलकर रख देता है तो फिर विदेशी लिपि से कैसा बदलाव आता होगा।

यह मत कहिए कि लिपि बदलने से क्या अंतर पड़ता है। मुझे तो 'दण्ड' में 'दंड' से अधिक प्रहार शक्ति लगती है। 'दंड' को तो मैं फिर भी सह लूँगा। पर 'दण्ड' सिर पर पड़ते ही खून का फव्वारा फूट पड़ता है। यह ऐसे है, जैसे 'लाठी' न पड़ी हो, बल्कि 'लट्ठ' सिर पर पड़ा हो, यही बात भयंकर में प्रतीत होती है। आजकल देवनागरी का 'भ' बिना घुंडी का हो गया है -सॉफ़्ट - कोमल। घुंडीदार मरोड़ खाया 'भ' ऐसे लगता है जैसे मूँछदार मुँह खोलकर कोई दहाड़ रहा हो। और 'शंकर' को भी दोनों तरह से लिखो। बिंदी के साथ और 'ङ्' के साथ। 'ङ्' के नीचे 'क' लगाकर जो शंकर लिखा जाता है, वह मुझे 'प्रलयंकर' प्रतीत होता है। इसी तरह घुंडीदार 'भ' और 'ङ्' युक्त 'भयङ्कर' मुझे 'भयंकर' से अधिक डरावना प्रतीत होता है।

मुझे याद है, जब मैंने एक बार अपनी मूँछ मुंडा ली थी। तब न तो पत्नी ने पहचाना, न बच्ची ने। बोले - तुम वैसे ही ठीक थे। ऐसे तो पराए-पराए लगते हो। ऐसे में सोचिए, जब हिंदी को देवनागरी की बजाय रोमन लिपि में लिखा जाता है तो हिंदी वालों को अंदर-अंदर कैसा लगता होगा! लगता होगा कि यह बाप अपना बाप नहीं है। माँ अपनी माँ नहीं है। 'माँ' को 'मां' लिखें, तब भी वह साड़ी के पल्लू से हाथ पोंछकर आलिंगन में भरती 'माँ' नहीं आती, जिससे लिपटने को मन करता है। 'मां' पढ़कर लगता है जैसे माँ ने नौकरी ज्वाइन कर ली है और मुझे दो फुट दूर खड़े होने को कह रही है। फिर भला सोचिए 'maan' पढ़कर मन में क्या आता होगा! पहले तो वह 'माँ' नहीं, 'मान' पढ़ी जाती है। अनुनासिक ध्वनि की तो अंत्येष्टि हो जाती है। अगर 'man' लिखें तो वहाँ भी 'मैन' या आदमी पहले आता है। उसे धक्का देकर धकेलते हैं तो नकली 'मां' खिसियाती हुई आती है। और अगर केवल 'ma' से काम चलाएँ तो माँ विधवा-सी लगती है जिसका सर्वस्व लुट गया हो।

सच यह है कि भाषा केवल 'अर्थ' तक सीमित नहीं है, वह उससे निकली गहरी 'ध्वनि और व्यंजना' से संबंधित है, जिसमें लिपि यानी बाहरी रूपाकार का भी योगदान है।

रोमन में लिखी हिंदी भाषा हिंदी नहीं, उसका अस्थिपिंजर लगता है। लगता है, जैसे, किसी ने मेरी साइकिल का पुर्जा-पुर्जा खोलकर मेरे आँगन में खड़ा कर दिया हो और कह रहा हो -चलाओ! ध्यान से देखो, पूरी साइकिल है। और मैं! कभी इधर देखता हूँ कभी उधर!!

बाल-कविताएं

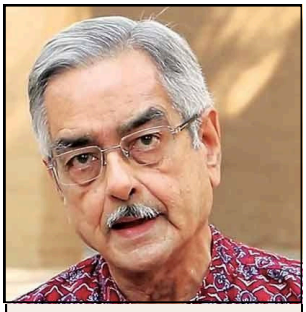

प्रयाग शुक्ल
prayagshukla2018
@gmail.com

मोर

नाच रहा है देखो मोर
घूम घूम कर चारों ओर
खोल दिए हैं सारे पंख
रंगबिरंगे न्यारे पंख
बादल जब छाते घनघोर
झूम झूम है उठता मोर
घूम घूम कर चारों ओर
नाच दिखाता सुन्दर मोर।

पीली नीली न्यारी तितली

तितली नन्ही प्यारी तितली
पीली नीली न्यारी तितली
फूलों पर फूलों सी तितली
तितली क्यारी क्यारी तितली
अपने नन्हें पंख उठाए
रंगों की इक लहर बनाए
चुप चुप चुप उड़ती जाए
खिली धूप में कितनी भाए।

झूला झूले

झूला झूले गुड़िया रानी,
झुला रही है चिड़िया रानी।
देख रहे हैं बन्दर मामा,
पहने कुरता और पाजामा।
बिल्ली मौसी भी आई है,
अपना चश्मा भी लाई है।
मन करता है वह भी झूले,
मारे पेंग गगन को छूले।

नया वर्ष है

रोचिका अरुण शर्मा
पुरस्कृत लेखिका, संपादक और प्रस्तोता
sgtarochika@gmail.com

भोर हुई लो जगो नींद से, झटपट आलस छोड़ो
तन की कसरत मालिश कर लो, उछलो, भागो, दौड़ो।

नया वर्ष है नया सवेरा, नव संकल्प हमारा
स्वच्छ रखेंगे घर-गलियारा सागर, नदी किनारा।

नहीं गंवाएं समय व्यर्थ ही, सीखें और सिखाएं
नई भोर का उत्सव हिल-मिल सुख-दुःख बाँट मनाएं।

शिक्षा के संग गूंज उठे फिर सत्य-अहिंसा नारा
सैनिक का सम्मान जहाँ हो देश हमें वो प्यारा।

बड़ी कामयाबी से होंगे, मिशन हमारे पूरे
लक्ष्य यही है छूट न जाएं अपने स्वप्न अधूरे।

गुस्सा हो पेन्सिल जी बैठी

एक बार पेन्सिल जी बोलीं, क्यों इतना लिखते हो
छील-छील छोटा कर देते, कागज़ पर घिसते हो।

लिख-लिख कर ही याद करूँ मैं, मेरा यही तरीका
वरना तुम हो नहीं काम की, सीखो सही सलीका।

गुस्सा हो पेन्सिल जी बैठी, लैपटॉप के पीछे
टाइप भी तो कर सकते हो, चेपो आँखें मीचे।

इतनी अकड़ दिखाती हो तो अपना रस्ता नापो
पाउच से तुम चल दो बाहर, गलियाँ-नुक्कड़ टापो।

धक्का ज़ोर रबर ने मारा, गुर्राया पैमाना
नहीं चाहिए निकट आलसी, चाहे दोस्त पुराना।

लुढ़क-गुड़क कर जगी पेन्सिल, सुबह नोट बुक खोली
साफ़ लिखावट 'गुड मॉर्निंग' जी, हँसते-हँसते बोली।

देहावसान

स्वर्गीय प्रो. लोपा मेहता

प्रो. डॉ. लोपा मेहता, मुंबई के जी.एस. मेडिकल कॉलेज में प्रोफेसर थीं, और उन्होंने वहाँ एनाटॉमी विभाग की प्रमुख के रूप में कार्य किया। उन्होंने 78 वर्ष की उम्र में लिविंग विल (Living Will) बनाई, जिसमें उन्होंने स्पष्ट लिखा: जब शरीर साथ देना बंद कर देगा, और सुधार की कोई संभावना नहीं रहेगी, तब मुझ पर इलाज न किया जाए - न वेंटिलेटर, न ट्यूब, न अस्पताल की व्यर्थ भागदौड़। मेरे अंतिम समय में शांति हो — जहाँ इलाज के ज़ोर से ज़्यादा समझदारी को प्राथमिकता दी जाए।

डॉ. लोपा ने सिर्फ यह दस्तावेज़ ही नहीं लिखा, बल्कि मृत्यु पर एक शोध-पत्र भी प्रकाशित किया। उसमें उन्होंने मृत्यु को एक प्राकृतिक, निश्चित और जैविक प्रक्रिया के रूप में स्पष्ट किया। उनका तर्क था कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने मृत्यु को कभी एक स्वतंत्र अवधारणा के रूप में देखा ही नहीं। चिकित्सा का आग्रह यह रहा कि मृत्यु हमेशा किसी रोग के कारण ही होती है, और यदि रोग का इलाज हो जाए, तो मृत्यु को टाला जा सकता है। लेकिन शरीर का विज्ञान इससे कहीं गहरा है।

उनका तर्क है - शरीर कोई हमेशा चलने वाली मशीन नहीं है, यह एक सीमित प्रणाली है, जिसमें एक निश्चित जीवन-ऊर्जा होती है। यह ऊर्जा किसी टंकी से नहीं आती, बल्कि सूक्ष्म शरीर के माध्यम से आती है। वही सूक्ष्म शरीर, जिसे हर कोई महसूस करता है, पर देख नहीं सकता। मन, बुद्धि, स्मृति और चेतना - इन सबका सम्मिलन ही यह प्रणाली बनाता है।

यह सूक्ष्म शरीर जीवन-ऊर्जा का प्रवेशद्वार है। यह ऊर्जा पूरे शरीर में फैलती है और शरीर को जीवित रखती है। हृदय की धड़कन, पाचन क्रिया, सोचने की क्षमता - ये सब उसी के आधार पर चलते हैं।

पर यह ऊर्जा असीमित नहीं है। हर शरीर में इसका एक निश्चित स्तर होता है। जैसे किसी यंत्र में लगी हुई फिक्स्ड बैटरी - न बढ़ाई जा सकती है, न घटाई जा सकती है। "जितनी चाबी भरी राम ने, उतना चले खिलौना" कुछ वैसा ही।

डॉ. लोपा लिखती हैं, कि जब शरीर की यह ऊर्जा समाप्त हो जाती है, तब सूक्ष्म शरीर देह से अलग हो जाता है। वही क्षण होता है जब शरीर स्थिर हो जाता है, और हम कहते हैं, "प्राण चले गए"। यह प्रक्रिया न किसी रोग से जुड़ी होती है, न किसी गलती से। यह शरीर की आंतरिक लय है - जो गर्भ में शुरू होती है, और पूरी होकर मृत्यु तक पहुँचती है। इस ऊर्जा का खर्च हर पल होता है - हर कोशिका, हर अंग अपना जीवनकाल पूरा करता है। और जब पूरे शरीर का 'कोटा' समाप्त हो जाता है, तब शरीर शांत हो जाता है।

मृत्यु का क्षण घड़ी से नहीं मापा जा सकता। वह एक जैविक समय होता है — जो हर किसी के लिए अलग होता है। किसी का जीवन 35 साल में पूरा होता है, तो किसी का 90 में, पर दोनों ही अपनी संपूर्ण यात्रा करते हैं। अगर हम उसे पराजय या ज़बरदस्ती न मानें, तो कोई भी अधूरा नहीं मरता।

डॉ. लोपा के अनुसार, जब आधुनिक चिकित्सा मृत्यु को टालने का हठ करती है, तब न सिर्फ मरीज़ का

शरीर थकता है, बल्कि पूरा परिवार टूट जाता है। आईसीयू में महीने भर की साँसों की कीमत कभी-कभी जीवन भर की जमा-पूँजी को खत्म कर देती है। रिश्तेदार कहते रहते हैं, "अभी आशा है" पर मरीज़ का शरीर पहले ही कह चुका होता है - "अब बस"। इसलिए वे लिखती हैं, "जब मेरी बारी आए, तो बस मुझे केईएम अस्पताल ले जाइए। जहाँ मुझे यक़ीन है कि अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं होगा। इलाज के नाम पर कोई दीर्घकालिक कष्ट नहीं दिया जाएगा। मेरे शरीर को रोका नहीं जाएगा - उसे जाने दीजिए।"

पर सवाल यह है - क्या हमने अपने लिए ऐसा कुछ तय किया है? क्या हमारा परिवार उस इच्छा का सम्मान करेगा? और जो करेंगे, क्या उन्हें समाज में सम्मान मिलेगा? क्या हमारे अस्पतालों में ऐसी इच्छाओं का सम्मान होता है, या अब भी हर साँस पर बिल बनेगा और हर मृत्यु पर दोष? यह इतना आसान नहीं है। तर्क और भावना का संतुलन साधना शायद सबसे कठिन कार्य है। अगर हम मृत्यु को शांत, नियत और शरीर की आंतरिक गति से आई प्रक्रिया मानना सीख जाएँ, तो शायद मृत्यु का भय कम होगा, और डॉक्टरों से हमारी अपेक्षाएँ अधिक यथार्थवादी होंगी। मेरे अनुसार, मृत्यु से लड़ना बंद करना चाहिए और उससे पहले जीवन के लिए तैयारी करनी चाहिए। और जब वह क्षण आए - तो शांति से, सम्मान के साथ उसका सामना करना चाहिए। बुद्ध की भाषा में कहें तो - मृत्यु जीवन की यात्रा का अगला चरण है।

(कप्तान प्रवीर भारती द्वारा प्रेषित)

◇·····◇

ऑस्कर के लिए नामांकित: होमबाउंड

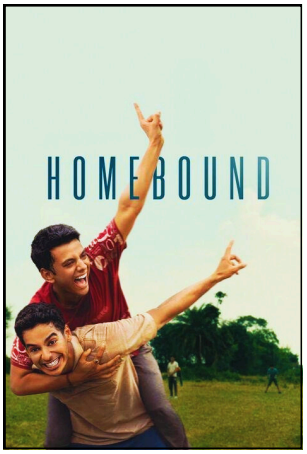

नीरज घेवान की फ़िल्म 'होमबाउंड' को इस बार भारत की तरफ़ से ऑस्कर के लिए भेजा गया है और इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा हो रही है। प्रसिद्ध संस्कृतिकर्मी वाणी त्रिपाठी टिक्कू लिखते हैं कि नीरज घेवान आसान फिल्में नहीं बनाते। मसान से लेकर गीली पुच्ची तक, उनकी सिनेमाई दृष्टि हमेशा एक शांत उग्रता लिए होती है - वह जाति, वर्ग और लिंग के परतों को इस तरह उघाड़ते हैं कि कोई शोर नहीं होता, लेकिन हर फ्रेम गहराई से चुभता है। 'होमबाउंड' में, जो लंबे अंतराल के बाद उनकी फ़ीचर फिल्म में वापसी है, घेवान सीधे दिल पर वार करते हैं। कान फ़िल्म समारोह में नौ मिनट की स्टैंडिंग ओवेशन पाने वाली और अब भारत की ऑस्कर में आधिकारिक प्रविष्टि बनी यह फ़िल्म सिर्फ़ दो दोस्तों की कहानी नहीं है जो सपनों और निराशाओं के बीच झूलते हैं - यह भारत का ही चित्र है: बिखरा हुआ, असमान, जीवट, और अंततः निर्मम।'

उत्तर भारत के एक छोटे से गाँव के दो बचपन के दोस्त पुलिस की नौकरी की तलाश में हैं, जो उन्हें वह सम्मान दिला सके; जिसके वे हकदार हैं। जैसे-जैसे वे अपने सपने के करीब पहुँचते हैं, बढ़ती हताशा उनकी दोस्ती को खतरे में डाल देती है, जिसने उन्हें एक लंबे समय से बांधे रखा है।

एक सच्ची घटना पर आधारित यह फिल्म कुछ तीखे और बेहतरीन ढंग से लिखे गए दृश्यों के माध्यम से उपर्युक्त मुद्दों को छूती है, साथ ही अपने पात्रों की भौगोलिक और आर्थिक वास्तविकताओं को भी प्रामाणिकता के साथ चित्रित करती है किंतु शुरू से अंत तक उदासी और संघर्ष के एक ही स्वर में उलझी रहती है, बिना किसी मुक्ति या रहस्योद्घाटन के। संदर्भित मुद्दों से हम भली-भांति परिचित हैं, यह उन पर कोई नया प्रकाश नहीं डालती या हमारी उन्हें देखने की दृष्टि को चुनौती देती है - बस परिचित ज़मीन पर घूमती है। एक मज़बूत भावनात्मक मोड़ या गति या परिवर्तन का एहसास कम होता है - भावनाएं क्लाइमेक्स से सार्थक रूप से जुड़ नहीं पातीं।

इस फ़िल्म का छायांकन प्रभावशाली है - खासकर बड़ी भीड़ वाले दृश्यों को संभालने में। फिल्म की कास्टिंग भी विशेष तौर पर उल्लेखनीय है। ईशान खट्टर और विशाल जेठवा ने परिपक्व अभिनय किया है - दोस्ती की मासूमियत और भावनात्मक रूप से कमज़ोर पलों - दोनों को समान सहजता से कैद किया है। जाह्नवी कपूर को स्क्रीन पर अपेक्षाकृत कम समय मिला है, लेकिन वे एक गहरी छाप छोड़ती हैं, जो आपको वास्तव में दर्द का एहसास कराती है। अन्य कलाकारों में, हर्षिका परमार और श्रीधर दुबे का अभिनय अच्छा है; छोटे से छोटे किरदार भी अपनी छाप छोड़ते नज़र आते हैं। संगीत अच्छा है किंतु असाधारण नहीं। संवाद असाधारण हैं। बहरहाल, कुछ दृश्य मंचीय लगते हैं। फिल्म एक शक्तिशाली चरम पर समाप्त होती है, जो दर्शकों को सन्नाटे में छोड़ जाती है।

पटकथा उस स्तर तक नहीं पहुँच पाती, भावनात्मक ऊँचाई या कहीं कि एक मज़बूत कथानक छूट जाता है। यहाँ तक कि अंत भी - जो कोविड की पृष्ठभूमि में लौटता है - एक समाधान से अधिक एक कठिन समय की याद दिलाता है। इसमें कोई शक नहीं कि 'होमबाउंड' दिल और शिल्प से बनी है, यह भावनाओं को तो जगाती है किंतु विचारों को नहीं।

प्रतीक और संकेत

अनुवाद: **प्रगति टिपणीस**

व्लदीमिर नबोकव
विवादास्पद उपन्यास
लोलिता के लेखक

प्रगति टिपणीस

पिछले कुछ सालों में चौथी बार वे इस बात को लेकर अपना सिर खपा रहे थे कि लाइलाजी की हालत तक बिगड़ गए दिमाग़ वाले नौजवान को सालगिरह पर क्या तोहफ़ा दिया जाए, उस युवक को अब न ही कोई चाह रही थी और न ही तमन्ना। इंसान द्वारा बनाई चीज़ों को वह या तो बुराई का गढ़ मानता था, या फिर उनमें उसे कोई जानलेवा साज़िश छिपी दिखती थी। ऐसी साज़िश जिसे कोई दूसरा पहचान या महसूस नहीं कर सकता था। उसे वे सारी चीज़ें ऐसी सहूलियतों के लिए बनी लगती थीं जिनकी उसकी ख़याली दुनिया में कोई जगह नहीं थी। उसके लिए ऐसा कुछ भी नहीं ख़रीदा जा सकता था जिससे उसे चोट या डर लगने की सम्भावना हो, इसलिए किसी भी प्रकार के गैजेट, यंत्र वग़ैरह का तो सवाल ही नहीं उठता था। उसके माता-पिता ने बहुत सारी चीज़ों को नकारने के बाद आख़िरकार एक तोहफ़ा चुन ही लिया। उन्होंने फलों की जेली के दस जारों वाली एक टोकरी ख़रीदी, उन्हें लगा कि यह तोहफ़ा लज़्ज़तदार भी है और हर तरह से महफ़ूज़ भी।

उनकी शादी के कई वर्षों बाद उसका जन्म हुआ था। अब वे काफ़ी बूढ़े हो चुके हैं। माँ ने बिखरे हुए अपने भूरे बालों को जैसे-तैसे चिमटियों में समेट रखा था। उसके कपड़े सस्ते और बेरंग थे। जबकि उसकी उम्र की दूसरी औरतें आम तौर पर उससे बिलकुल उलटी थीं। मिसाल के तौर पर उनकी पड़ोसन श्रीमती सोल का चेहरा गुलाबी रंग की सभी छटाओं से लिपा-पुता रहता था और सिर पर हमेशा जंगली फूलों से बना ताजनुमा कुछ होता था। लेकिन उसका चेहरा इतना सफ़ेद और सपाट था कि सभी ऐब हलकी रोशनी में भी आसानी से प्रकट हो जाते थे। उसके पति अपने देश में काफ़ी कामयाब कारोबारी हुआ करते थे, लेकिन अब वे न्यूयॉर्क में अपने भाई आइज़ैक पर पूरी तरह निर्भर थे। आइज़ैक पिछले चालीस साल से अमरीका में रहने के कारण पूरी तरह से अमरीकी हो चुका था। वे दोनों उस से बहुत कम मिलते थे और आपस में उसे 'प्रिंस' कहकर पुकारते थे।

उस शुक्रवार उनके बेटे का जन्मदिन था और सब कुछ गड़बड़ हो रहा था। मेट्रो-ट्रेन जिसमें वे जा रहे थे, बिजली कट जाने के कारण दो स्टेशनों के बीच लगभग पन्द्रह मिनट के लिए अटक गई थी। उन 15 मिनटों के दौरान उन्हें अपने दिल की धड़कनों और अख़बारों की सरसराहट के अलावा कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था। मेट्रो से उतरकर जो बस उन्हें लेनी थी वह देर से चल रही थी, इसलिए सड़क के किनारे लंबे समय तक खड़े होकर उन्हें उसका इंतजार करना पड़ा, और जब वह आई तो स्कूल के बातूनी बच्चों से भरी हुई थी। जब वे सैनिटोरियम की ओर जाने वाले भूरे-से रास्ते पर पहुँचे तो बारिश शुरू हो गई। सैनिटोरियम में भी उन्हें थोड़ा इंतज़ार करना पड़ा। उनका बेटा आम तौर पर अपने कमरे में रहता था और कुछ न कुछ करने में मसरूफ़ रहता था। पर उस दिन उनसे मिलने मुंहासों से भरे चेहरे और सदा उदास, परेशान रहने वाले उनके बेटे के बजाय एक नर्स आई। वो उस नर्स को जानते थे और यह भी कि उसे उन से कोई हमदर्दी नहीं थी। नर्स ने साफ़ शब्दों में उन्हें बताया कि उनके बेटे ने अपनी जान लेने की फिर कोशिश की थी। स्थिति को स्पष्ट करते हुए वह आगे बोली कि अब वह बिलकुल ठीक है लेकिन मुमकिन है कि आप लोगों से मिलने

पर वह फिर उत्तेजित हो जाए। चूँकि उस अस्पताल में काम करने वालों की भारी कमी थी इसलिए वहाँ सब कुछ बिखरा-बिखरा रहता था। वहाँ चीज़ें बड़ी आसानी से गुम या इधर-उधर हो जाती थीं, इसलिए उन दोनों ने सोचा कि वे तोहफ़ा वहाँ नहीं छोड़ेंगे और अगली मुलाक़ात के समय उसे फिर लेकर आएँगे।

इमारत से बाहर आकर वह पति के छाता खोलने का इंतज़ार करने लगी और खुल जाने पर पति की बाँह पकड़कर चलने लगी। उसका पति परेशान होने पर रुक-रुककर अपना गला साफ़ करता है जो वह उस दिन भी कर रहा था। सड़क के दूसरी ओर के बस-स्टॉप पर पहुँचकर उसके पति ने छाता बंद कर दिया। कुछ फ़ीट की दूरी पर तेज़ हवा में लहराते और तेज़ बारिश से तरबतर हो गए पेड़ के नीचे की गड़ही में उन्होंने एक छोटे-से परकटे पंछी को बेबसी से छटपटाते देखा।

मेट्रो स्टेशन तक के लम्बे सफ़र के दौरान उन दोनों के बीच कोई बातचीत नहीं हुई, उसकी नज़र बार-बार पति की बूढ़ी हथेलियों पर पड़ जाती थी, जिनसे उसने छतरी का हैंडल पकड़ रखा था और जो रुक-रुककर झटक-सी जाती थीं। पति की सूजी नसों और भूरी धब्बेदार त्वचा को देखते समय उसे यह एहसास हुआ कि उसकी आँखों में आँसू बड़ी तेज़ी से उमड़ रहे हैं। अपने मन को किसी और बात की ओर लगाने की कोशिश में उसने चारों ओर देखना शुरू किया और यकायक वह आश्चर्य और करुणा से विभोर हो उठी। एक बूढ़ी औरत उसे बहुत जानी-पहचानी लगी, जिसके कंधे पर सिर रख कर काले बालों वाली और भद्दे लाल रंग में पुते गंदे नाख़ूनों वाली एक छोटी लड़की रो रही थी। वह औरत रिबेका बरीसवना से मिलती-जुलती थी, जिसकी बेटी ने वर्षों पहले मिन्स्क के सलोवचिक परिवार के किसी मर्द से शादी की थी।

पिछली बार जब उनके बेटे ने ख़ुदकुशी करने की कोशिश की थी, तो डॉक्टर के मुताबिक़ उसका तरीक़ा बिलकुल नया और नायाब था। वह उस रोज़ ज़रूर कामयाब हो गया होता अगर एक ईर्ष्यालु साथी-मरीज़ ने यह सोचकर उसे रोक न लिया होता कि कहीं वह उड़ना न सीख जाए। वह तो बस अपनी दुनिया में एक छेद करके उससे भाग निकलना चाहता था। उसकी दिमाग़ी हालत के बारे में कुछ दिनों पहले एक विस्तृत रिपोर्ट एक साइंस-पत्रिका में छपी थी, जिसे सैनिटोरियम के डॉक्टर ने उन्हें पढ़ने के लिए दिया था। लेकिन वह और उसका पति वह रिपोर्ट बहुत पहले ही पढ़ चुके थे और बीमारी के बारे में अपनी समझ बना चुके थे। रिपोर्ट में बीमारी को 'रेफ़रेंशियल मेनिया' कहा गया था, वही जो 'स्व-सम्बद्ध उन्माद' भी कहलाता है। इस बीमारी से ग्रस्त आदमी यह समझता है कि उसके आसपास होने वाली हर चीज़ उसकी शख़्सियत और ज़िन्दगी से किसी न किसी रहस्यमयी तरीक़े से जुड़ी हुई है।

लेकिन उनका बेटा चूँकि ख़ुद को बहुत बुद्धिमान मानता था इसलिए उसको लगता था कि आम लोग इससे जुड़े हो ही नहीं सकते। उसे यह महसूस होता था कि वह जहाँ भी जाता है क़ुदरत उस पर टकटकी लगाए रखती है। तारों से लदे आसमान में तैरते बादल उसके बारे में जानकारी इकट्ठा करके संकेतों के माध्यम से ख़ुफ़िया अन्दाज़ में एक-दूसरे को भेजते रहते हैं। पेड़ भी रात के समय उदास इशारों में उसके विचारों पर चर्चा करते रहते हैं। सूरज की किरणें, कंकड़-पत्थर, दाग़-धब्बे वग़ैरह मिलकर ऐसी आकृतियाँ बनाते हैं, जो उन घटनाओं के बारे में जानकारी बहुत फूहड़ तरीक़े से प्रस्तुत करती हैं जिन्हें उसे रोकना होता है। हर चीज़ एक पहेली है और हर पहेली की विषय-वस्तु वह। उसके चारों ओर जासूस हैं। उनमें से कुछ तो बस निगहबानी करते हैं, जैसे काँच की सतहें और थमे हुए जलाशय; और दूसरे - जैसे दुकान की खिड़कियों पर टंगे कोट - ऐसे गवाह हैं जो पूर्वग्रह से ग्रस्त हैं, उनके दिल हत्यारों के हैं। इसके अलावा बहता पानी, तूफ़ान वग़ैरह पागलपन की हद तक उन्मादी हैं और उसके बारे में ग़लत राय रखते हैं, और उसके कामों का हमेशा

उल्टा मतलब निकालते हैं। उसे हमेशा चौकस रहना चाहिए और अपने जीवन का हर पल, हर मौक़ा चीज़ों के बीच बहती संकेतों की तरंगों को समझने में लगाना चाहिए। साँस के साथ जो भाप वह छोड़ता है उसे भी एक क्रमांक देकर फ़ाइल में सहेज लिया जाता है। काश! उसमें दिलचस्पी केवल उसके इर्द-गिर्द की वस्तुओं को ही होती, लेकिन अफ़सोस, ऐसा नहीं था! दूरी जितनी बढ़ती जाती थी, उसके ख़िलाफ़ साज़िश का पैमाना उतना ही बढ़ता जाता था। आकार में लाखों गुना बढ़ी हुई उसकी रक्त कोशिकाओं की परछाइयाँ असीम मैदानों पर फैलती हैं; और दूर बहुत दूर खड़े दुरूह और भीमकाय पहाड़ उसके सच को अपने पत्थरों और बिलखते देवदारों के ज़रिये खोलते हैं।

जब वे मेट्रो की गड़गड़ाहट और उसकी बदबूदार हवा से बाहर आए तो दिन का बचा-खुचा हिस्सा स्ट्रीट-लाइट में घुल-मिल चुका था। वह रात के खाने के लिए मछली ख़रीदना चाहती थी। उसने जेली के जारों वाली टोकरी पति को थमाई और घर जाने को कहा। किराये के फ़्लैट वाली इमारत में जब वह तीसरी मंज़िल पर पहुँचा तो उसे याद आया कि उसने अपनी चाबियाँ दिन में उसे दे दी थीं। वह चुपचाप सीढ़ियों पर बैठ गया और दस मिनट बाद जब वह सीढ़ियों पर तेज़ी से चढ़ती हुई आई तब वह वैसे ही चुपचाप उठ भी गया। अपनी भूल पर शर्मिंदा वह मंद-मंद मुस्कुरा रही थी और ख़ुद से नाख़ुश अपना सिर भी हिला रही थी। दो कमरों के अपने फ़्लैट में दाख़िल होते ही वह आईने के पास गया। अपने मुँह के कोनों को दोनों अँगूठों से ठेलते हुए उसने अपनी डेंटल प्लेट निकाली जो नई होने के बावजूद बहुत तक़लीफ़देह थी। जब तक वह मेज़ पर खाना लगा रही थी वह बैठकर रूसी में अख़बार पढ़ने लगा। अख़बार पढ़ते-पढ़ते ही उसने उन चीज़ों को खाया जिनके लिए दाँतों की ज़रूरत नहीं थी। वह उसका मूड समझती थी इसलिए चुप थी। जब वह सोने चला गया, तो वह ताश की पुरानी गड्डी और पुराने फ़ोटो-एल्बम लेकर ड्राइंग रूम में ही बैठी रही।

संकरे अहाते के उस पार अँधेरे में रखे सिगरेटदान पर बारिश की टाप सुनी जा सकती थी। केवल खिड़कियों में हल्की रोशनी नज़र आ रही थी। और उनमें से एक खिड़की में काली पतलून पहने एक आदमी सिर के नीचे अपने हाथ बाँधे पलंग पर लेटा हुआ था लेकिन उसकी कोहनियाँ हवा में थीं। उसका बिस्तर गंदा था। वह उठी, उसने पर्दा बंद किया और एल्बम में तस्वीरें देखने लगी। जब उसका बेटा बच्चा था तो अधिकतर बच्चों के मुक़ाबले हर बात पर थोड़ा ज़्यादा अचरज प्रकट करता था। एलबम से जर्मन नौकरानी, जिसे वे लीपज़िग में छोड़ आए थे, और मोटे चेहरे वाले उसके प्रेमी की तस्वीर फ़र्श पर गिर गई। वह एलबम के पन्ने पलटती गई: मिन्स्क, क्रान्ति, लीपज़िग, बर्लिन, फिर लीपज़िग, ढलान पर बना एक घर जो बहुत ही धुंधला था। इसमें उनका बेटा चार साल का है, एक पार्क में भौं चढ़ाए और झिझकते हुए वह एक चुलबुली गिलहरी से आँखें चुरा रहा है, ठीक वैसे ही जैसे वह हर अजनबी के साथ किया करता था। एक तस्वीर में सदा बेचैन रहने वाली आंटी रोज़ा थीं, जिनके चेहरे की हर हड्डी गिनी जा सकती थी, उनकी आँखें धंसी हुई थीं। नाज़ियों ने जब तक उनको और उन जैसे सभी को मौत के घाट नहीं उतारा था, उनका जीवन दिवालियेपन, रेल दुर्घटनाओं और कैंसर फैलने जैसी ख़बरों की दहशत तले गुज़रता था। लड़का इस तस्वीर में छह साल का है - तब वह हाथ और पैर दोनों से परिंदों के अद्भुत चित्र बनाया करता था लेकिन बड़ों की तरह अनिद्रा का शिकार हो चुका था। अगली तस्वीर में उसका चचेरा भाई था जो अब एक मशहूर शतरंज खिलाड़ी है। फिर से लड़के की तस्वीर, इसमें वह लगभग आठ साल का है, अब उसे समझना मुश्किल हो चुका था, वह घर के हॉल के वॉलपेपर से डरता था, किताब की उस तस्वीर से भी डरता था जिसमें पथरीले पहाड़ों का सुन्दर दृश्य था और किसी नंगे पेड़ की एक शाखा से किसी पुरानी गाड़ी का एक पहिया लटक रहा था। यहाँ वह दस साल का था - उसी साल उन लोगों ने यूरोप छोड़ा था। उसे यकायक सफ़र के वे

सभी वाक़ये याद आ गए जो सिर्फ़ और सिर्फ शर्मिंदगी, बेइज़्ज़ती और तौहीन भरे मंज़रों से जुड़े थे। उसे वे सारे शरारती, बदसूरत, और फूहड़ बच्चे भी याद आए, जिनके साथ अमरीका पहुँचने पर उनके बेटे को 'स्पेशल स्कूल' में रखा गया था। निमोनिया की लम्बी बीमारी से उबरने के फौरन बाद उसकी ज़िन्दगी में वह समय आया था जब उसके डर जो छोटे-छोटे हुआ करते थे, ठोस और जटिल होने लगे थे। उन छोटे डरों को उसके माता-पिता अपने विलक्षण और प्रतिभाशाली बच्चे की ख़ूबियों के अलावा कोई और नाम देने के लिए राज़ी न होते थे। जैसे-जैसे उसके डर पुख़्ता व पेचीदा होते गए, आम लोगों के लिए उसे और उसके डरों को समझना टेढ़ी खीर होता गया।

इन हालात के अलावा भी उसने बहुत कुछ स्वीकारा और सहा था क्योंकि वह यह अच्छी तरह जानती थी कि ज़िन्दगी का मतलब ही है ख़ुशियों का एक के बाद एक हाथ से निकलते जाना। उसके सन्दर्भ में यह सिर्फ़ खुशियों तक महदूद नहीं था बल्कि निराशा भरे काले बादलों के छँटने की सभी उम्मीदें धीरे-धीरे घटती जा रही थीं। उसने दुःख-दर्द के उन तमाम ज्वार-भाटों के बारे में सोचा जिन्हें वह और उसका पति लगातार झेलते थे। उसने उन अदृश्य मानव रूपी राक्षसों के बारे में भी सोचा जो अमानवीय तरीक़े से उसके बेटे को चोट पहुँचाते रहे थे; संसार में कोमलता की दर्दनाक स्थिति और उसके भविष्य के बारे में सोचा और यह भी कि कैसे कोमलता या तो कुचल दी जाती है या बरबाद कर दी जाती है, या उसे पागलपन का नाम दे दिया जाता है; उजाड़ कोनों में दुबके बैठे बुदबुदाते उपेक्षित बच्चों और उस सुन्दर जंगली घास के बारे में भी सोचा जो किसान की नज़रों से बच नहीं पाती।

लगभग आधी रात हो चुकी थी। उसे अचानक अपने पति के कराहने की आवाज़ सुनाई दी और अगले ही पल लड़खड़ाता हुआ वह ड्राइंगरूम में आ पहुँचा। उसने पाजामा-सूट के ऊपर फ़र के कॉलर वाला पुराना ओवरकोट पहना हुआ था। यह ओवरकोट उसे नए नीले गाउन के मुक़ाबले ज़्यादा पसंद था।

वह कराहते हुए बोला, "मुझे नींद नहीं आ रही!"
"क्यों नहीं आ रही? तुम तो इतना थके हुए थे?"
"मैं सो इसलिए नहीं पा रहा हूँ, क्योंकि मर रहा हूँ।" यह कहकर वह सोफ़े पर लेट गया।

"कहीं यह तुम्हारे पेट की वजह से तो नहीं? मैं डॉ. सोलव को बुलाऊँ?"
"नहीं, नहीं, किसी डॉक्टर को बुलाने की ज़रूरत नहीं है।" वह कराह उठा।

"डॉक्टरों का सत्यानाश हो, भाड़ में जाएँ वे सब के सब! हमें जल्दी ही उसे वहाँ से निकालना होगा। अन्यथा, हम ही ज़िम्मेदार होंगे... ज़िम्मेदार!"

वह उसी पल उचककर बैठ गया, उसके दोनों पैर फ़र्श पर थे और अपने माथे पर ज़ोर-ज़ोर से मुक्के मारने लगा।
उसे इस हाल में देखकर शांत स्वर में वह बोली, "ठीक है, हम कल सुबह उसे घर ले आएँगे।"
"मुझे चाय पीनी है," यह कहकर वह बाथरूम की ओर चला गया।

बमुश्किल झुककर उसने फ़र्श पर गिर गए ताश के पत्तों और एक-दो तस्वीरों को उठाया, पान का ग़ुलाम, हुकुम का नहला, हुकुम का इक्का, नौकरानी एल्सा और उसका वहशी प्रेमी।

वह लौटा तो पुरजोश था, ऊँची आवाज़ में बोला, “मैंने सब कुछ तय कर लिया है। हम उसे अपना बेडरूम दे देंगे। हम दोनों रात में बारी-बारी से उसके साथ वहाँ रहा करेंगे और बाक़ी की रात इस सोफ़े पर बिताया करेंगे। हफ़्ते में कम से कम दो बार हम उसे डॉक्टर को दिखाया करेंगे। प्रिंस क्या कहेगा इसके बारे में भी परेशान होने की ज़रूरत नहीं है। वैसे भी वह कुछ नहीं कहेगा, यह बंदोबस्त उसके लिए सस्ता पड़ेगा।”

तभी टेलीफोन बजा। इस वक़्त तो कभी कोई फ़ोन नहीं करता था। वह कमरे के बीचों-बीच खड़ा होकर पैरों से टटोलकर उस चप्पल को तलाश रहा था जो उसके पाँव से उतर गई थी, और बिन दाँतों वाला अपना पोपला मुँह बाए बच्चों की तरह बीवी की ओर देख रहा था। चूँकि वह उससे अच्छी अंग्रेज़ी जानती थी, इसलिए कॉल हमेशा वही अटेंड करती थी। एक लड़की की धीमी-सी आवाज़ आई।

“क्या मैं चार्ली से बात कर सकती हूँ?”
“आपने कौन सा नंबर मिलाया है?... नहीं, यह ग़लत नंबर है।”

उसने धीरे से रिसीवर नीचे रखा और उसका हाथ अनायास अपने दिल की ओर चला गया। वह बोली, “इस कॉल ने मुझे डरा दिया था,” वह जवाब में मुस्कुराया और फिर पूरे जोश से अपनी बात फिर शुरू कर दी, “कल दिन होते ही हम उसे ले आएँगे। उसकी हिफ़ाज़त के लिए हम सभी चाक़ू एक दराज़ में रखकर उस में ताला लगा देंगे। उसकी हालत जब बहुत ख़राब भी थी तब भी वह दूसरों के लिए कभी ख़तरा नहीं था। टेलीफ़ोन दूसरी बार बजा। उसी बेजान, परेशान-सी जवान आवाज़ ने चार्ली से बात करनी चाही।

“आपके पास ग़लत नंबर है। मेरे ख़याल से आप ज़ीरो की जगह अक्षर ‘ओ’ डायल कर रही हैं।”
उसने फ़ोन रख दिया।

वे दोनों आधी रात को बेवक़्त चाय पीने बैठ गए। सालगिरह का तोहफ़ा मेज़ पर रखा था। वह ज़ोर-ज़ोर से चुस्की ले रहा था; उसका चेहरा चमक रहा था; समय-समय पर वह अपने गिलास को गोल-गोल घुमाता ताकि चीनी पूरी तरह से घुल जाए। उसके गंजे सिर के दोनों किनारों की नसें उभरी हुई थीं, और उसकी ठुड्डी पर बहुत ही छोटे-छोटे सफ़ेद बाल चमक रहे थे। जब तक वह उसके प्याले में चाय उड़ेल रही थी, उस के शौहर ने चश्मा लगाया और चमकीले पीले, हरे और लाल छोटे जारों को दोबारा ख़ुशी से निहारने लगा। उसके बेढंगे से नम होंठ उन पर लिखे लेबल बड़े चाव से दोहरा रहे थे, “खुबानी, अंगूर, आलूबुख़ारा, आड़ू।” वह सेब वाला जार उठाने ही वाला था कि टेलीफ़ोन की घंटी फिर बज उठी।

◇.....◇

रूसी कवि रसूल हमज़ातव की कविताएँ

अनुवाद: **प्रगति टिपणीस**

रसूल हमज़ातव (1923-2004) की मादरी ज़बान 'अवार' थी और उन्होंने अपनी सभी रचनाएँ इसी भाषा में लिखीं, जिन्हें पहले रूसी में अनूदित किया गया और फिर अन्य भाषाओं में। उनकी कविताओं में 'ज़ुरावली' भी शामिल है, जो प्रसिद्ध सोवियत गीत बन गया।

सारस

(इस कविता को रूस और पूर्व सोवियत संघ के राज्यों में वही दर्जा प्राप्त है जो In Flanders Field या पॉपी फूलों को यूरोप में प्राप्त है।)

मुझे लगता है यूँ अकसर
लहू रंजित समर-भू पर
वीर सैनिक हुए जो खेत
ज़मीं में नहीं हुए वे दफ़्न
बल्कि बन गए हैं सारस श्वेत

तभी से नील व्योम में वे
उड़ते फिरते हैं लगातार
और आती रहती है हम तक
उन कंठों की विकल पुकार

इसीलिए कितनी ही बार
घेर लेता है हमें संताप
देखते हैं उठाकर सिर
जब भी विस्तृत आकाश

शांत वेला गोधूलि की
हो रहा श्यामल आसमान
पंक्तिबद्ध उड़ता सारस-दल
कराता है मुझको यह भान

कि सारस नहीं हैं ये सारे
जो दिखते हैं उड़ते ऊपर
कभी ये भी थे हम जैसे
मनुज चलते-फिरते भू पर

अपनी विस्तीर्ण यात्रा में
पुकारते हैं वक ज्यों कुछ नाम
बड़ी अपनी सी लगती है
मेरे कानों को उनकी तान

कहीं कारण तो नहीं यही
इस वक-दल की पुकार
मुझे हैं खींचती ठीक वैसे
ज्यों सदियों पुरानी ज़ुबाँ 'अवार'
शाम कुछ धुँधली-धुँधली है
धुमैला सा है अंबर भी

उड़ा जा रहा क्लांत एक झुंड
बीच में जगह कुछ ख़ाली सी
हो मेरा इंतज़ार वहाँ जैसे
जगह भरनी हो मुझको ही

नहीं दिन अब वह ज़्यादा दूर
कि उसे गहराते धुँधलके में
अंग-संग सारस दल के मैं
उड़ान लेता हूँगा भरपूर

गगन की परतों से फिर मैं
उन्हीं के स्वर में, उनके साथ
पुकारूँगा तुम सबको मीत
तुम भी सुन लेना हमारी बात।

तीसरी दुनिया

जब मैं परलोक पहुँचूँगा
मिलूँगा फिर अम्मा और अब्बा से
फ़ौरन ही वे पूछेंगे -
क्या हाल है धरती पर?
और मैं चुप!
उन धर्मनिष्ठों को सच कैसे बताऊँ?।
मेरे लिए बेहतर हो कि गूँगा हो जाऊँ...

जब मैं परलोक पहुँचूँगा
मिलेंगे मुझ समर-भूमि में खेत हुए भाई:
कैसा है देश हमारा, मातृभूमि और घर
पहली बार झूठ बोलने का करेगा मेरा मन
किस मुँह से बताऊँगा
युद्ध में काम आए भाइयों को
कि नहीं रहा अब उनका देश?!

जब मैं परलोक पहुँचूँगा
कुछ बहुत पुराने दोस्तों से मिलूँगा
बड़ी मशक़्क़त के बाद पहचानेंगे मुझे
और लगा देंगे सवालों की झड़ी फूलों-सी:
बताओ, कहाँ है बेहतर, यहाँ या धरती पर
नज़रें उनसे मिलाने की हिम्मत जुटा न पाऊँगा

जब मैं परलोक पहुँचूँगा
चाहूँगा कि पहुँच जाऊँ तीसरी दुनिया में
बिना किसी जवाबतलबी के
जहाँ हो सन्नाटा...
उस दुनिया में, जहाँ अल्लाह, भगवान, ईसा
नहीं दाग़ते दिल को भेदते सवाल।

अष्टपदियाँ

अष्टपदी में हैं पंक्तियाँ आठ
अपने पहाड़ों की नदियाँ आठ
रास्ता शायरी और सागर का होता दूर
मेरी शुभकामना मिले तुम्हें समुन्दर

अष्टपदी में हैं पंक्तियाँ आठ
पहाड़ी इलाक़ों के लड़कों आठ
करो तुम पार सैकड़ों पगडंडियाँ
बिना गुमाए पहाड़ी टोपियाँ

*****

पुराने समय में लिखते थे धीरे-धीरे
पूर्वज हमारे तलवारों पर तलवारों से
वही, जो मैं पेंसिल हाथ में पकड़कर
मुरझाए शब्दों में उकेरना चाहता हूँ।

पूर्वज हमारे कैसे भी घोड़ों पर हो सवार
प्रियजनों से ले विदा निकलते थे जंग पर
लिखते थे वे कहानियाँ पत्थरों पर खून से
जो मैं स्याही से लिखने की कोशिश में हूँ।

******

मेरी कविताएँ मेरे दिमाग़ की ही उपज नहीं
कई राहों से आई हैं ये, न छुपाउँगा कुछ
कायर ने कभी किए हैं शांत इनके स्वर
नायक ने उन्हें गढ़ा है अक्सर।

प्रेमी ने उन्हें बनाया है उन्नत
झूठे ने कलम घसीट लिखी मिथ्याएँ
मेरी चाहत हमेशा रही पंक्तियाँ ऐसी
जो लगें वेदों की ऋचाएँ

******

लोगों के होते हैं तीन पावन गीत
झलकते उनमें जीवन के ख़ुशी-ओ-ग़म
एक गीत है सबसे चमकदार
बुनती है शब्द जिसके माँ पालने पर।

दूसरा गीत भी माँओं का ही है
बर्फ़ीले गालों को हाथ से सहलाते हुए
गाते हैं जिसे बेटों की क़ब्र पर
और तीसरा गीत है - बाक़ी बचे गीत।

*****

शरद ऋतु के लक्षण होते जा रहे हैं साफ़
गरमियों तक जो कर रहे थे मातृभूमि का
स्तुतिगान
चिड़ियों के वे झुण्ड समझकर कि जन्नत
नहीं यहाँ
कर रहे गरम जगहों के लिए पितृभूमि का
पलायन
सिर्फ़ बहादुर, जो रहे बिलकुल शांत
देख रहे हैं उजड़ते बग़ीचों को
इस मुश्किल घड़ी में पंख फैलाकर
वे मातृभूमि छोड़ने की तैयारी में नहीं।

*****

अगर अचानक मैं भी धातु बन जाऊँ
मुझसे सिक्के मत बनाना
नहीं चाहता मैं किसी जेब में छनकना
और आँखों की निष्ठुर चमक बनना

अगर लिखा है मेरे मुक़द्दर में धातु बनना
मुझसे तुम हथियार लेना बना
ताकि तलवार और खंजर मानिंद
म्यान में सोऊँ और उड़ते हुए जंग में चमकूँ

मैं न भूलूँगा

न भूलूँगा उनको:
नाम मुझे जिन्होंने दिया
दुर्गम चट्टानें थीं पास या दूर
आसमान था सिर पर या छत
दी मुझे रोटी और कुछ मीठे बोल

न भूलूँगा उनको:
सर्दी के समय
जिन्होंने दी थोड़ी गरमी
ढका मेरा कांधा अपने चोग़े से
जब भी मिले मिलाया मुझसे हाथ
एक भाई की तरह

याद रखूँगा:
उन सब औरतों को
जिन्होंने उम्र के इस पड़ाव तक
दुःख में थामे मेरे हाथ और
उन सबको भी
जिन्होंने किया मेरा कलेजा तार-तार

नहीं भूलूँगा:
गहरी खाई को विश्वास के पुल ने कैसे पाटा
नेकदिली की एक छोटी-सी बूँद ने
दिल से नाराज़गी को कैसे छाँटा

नहीं भूलूँगा:
वफ़ादार दोस्त कैसे पल में हुए थे घातक
और आघात को उठे उनके हाथ
अगले ही पल कैसे हट गए थे
मेरे गुनाहगार सिर से

भूल जाऊँगा:
बादलों में बसे उस पठार को
जो है घिरा जंगली चीख़ों से
उसको जिसमें कोई आत्मा नहीं बसती
और जिसके चेहरे में छिपे हैं कई चेहरे

भूल जाऊँगा:
उसको जो मौक़ा मिलने पर भी
कोई चमत्कार नहीं कर पाया
और जो इनसान बन नहीं पाया
बाक़ी किसी को नहीं भूलूँगा।

स्मारक

नग़मों से बनाया है मैंने अपना स्मारक
हाँ, नहीं वो पठार की चट्टान-सा बुलंद
पर जब तक रहेगा मेरा पहाड़ी इलाक़ा
ढा न पाएगा कुछ भी मेरे गीतों के छंद।

न ही पहाड़ों पर भेड़ियों-सी चीखती पवन
न ही बारिश, बर्फ़बारी या गरमी की तपन
ता-ज़िन्दगी ये पहाड़ रहे मेरा गुरूर
मेरे बाद ये करेंगे मेरी बंदगी ज़रूर।

मेरी मशाल थामने से थकेंगे न कभी हाथ
अपने बच्चों को फटकारेंगी दिन-रात
पहाड़ी माएँ मेरी नेकनामी का देकर वास्ता
इस उम्मीद में कि बन जाएँ वे शाइस्ता।

नदी जैसे पत्थरों को बना देती है गिट्टी
मुझे बिखेर न पाएँगी समय की धाराएँ दाधीच
मिट न पाएगा मेरी कविता का सार कभी
राज़ उसका रहेगा महफूज़ मिसरों के बीच।

जब रुख़्सत हो मैं राह-ए-दूर पर चला जाऊँगा
उस जहान को, जहाँ से लौटकर कोई नहीं आता
आकाश में उड़ता उदास सारस बन जाऊँगा
जो रहेगा हमेशा सबको मेरी याद दिलाता।

वक़्त की मानिंद मैं भी बदलता रहा हूँ
कभी रहा हूँ तेज़-तर्रार, तो कभी हमवार
शातिर दिमाग़ मिरा कभी न हो पाया
मेरी रूह की आग पर सवार।

एक दीप जो जलाया था मैंने कभी
लौ उसकी बरसों तक देगी गरमी
न धिक्कारना मुझे कभी उसके लिए
मेरी क़िस्मत में रह गई हो जो कमी।

मैं नायक तो ज़िन्दगी में कभी न रहा
पर हर बुराई से पूरी शिद्दत से लड़ा
गीतों में जो दोहराया अपने गाँव का नाम
'दग़िस्तान मेरा' मक़बूलियत की सीढ़ियाँ चढ़ा।

दम्भी यूरोप बेशक़ न करे याद मुझे
भले हो कल्मीक में मेरा ज़िक्र कम
पर मेरे पहाड़ों पे गूँजेगा मेरे गीतों का सरगम
मेरी मादरी-ज़बान बोलेंगे मेरे हमदम।

मेरे शब्द न होंगे कभी घुप्प अँधेरों में गुम
उस नक़्शे पर, जो है कविता कहलाता
जब तक है ज़िंदा धरती पर एक भी 'अवार'
रहेगा वो मेरे गीत गुनगुनाता।

प्रगति टिपणीस हिंदुस्तानी समाज-रूस की सांस्कृतिक सचिव, लेखिका, रूसी तथा अंग्रेज़ी भाषाओं से हिंदी में अनुवादक, पांच-सदस्यीय दल के साथ मिलकर हिंदी-रूसी मुहावरा कोश पर कार्यरत

समृद्ध साहित्य की धरती हरियाणा

दिनेश शर्मा 'दिनेश'
dineshpharal@gmail.com

हरियाणा शब्द की व्युत्पत्ति 'हरि' अथवा 'हर' और 'यान' इन दो शब्दों के योग से हुई मानी जाती है। संस्कृत के अनुसार 'हरस्य यानम्' 'हरे यानम्' वा इति 'हरयाणम्' अर्थात 'हरि या हर' का 'यान' माना जाता है। दिल्ली संग्रहालय के एक अभिलेख के अनुसार विक्रम संवत 1384 (1327 ईसवी) के एक शिलालेख के अनुसार ''देशोऽस्ति हरियानारण्य: पृथिव्यां स्वर्ग संनिभः'' अर्थात पृथ्वी पर स्वर्ग के समान हरियाणा नामक एक देश है। भारतीय धर्म, दर्शन, कला, साहित्य आदि में प्रथम सृजन यहीं हुआ; ऐसा माना जाता है। महाभारत काल से पूर्व यहां वैदिक ऋचाओं, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद आदि ग्रंथों की रचना हुई। सरस्वती की पवित्र धारा से पोषित हरियाणा की धरती साहित्यिक दृष्टि से भी उर्वरा है। इसे वेद, पुराण, गीता, महाभारत आदि पवित्र ग्रंथों की रचना-स्थली होने का गौरव प्राप्त है।

हरियाणा में साहित्य सृजन के लिए संस्कृत, हिन्दी और हरियाणवी भाषाएँ अभिव्यक्ति का माध्यम रही हैं। वर्तमान में हरियाणवी संपूर्ण हरियाणा में ही नहीं वरन दुनिया भर में बसे हरियाणवियों द्वारा बोली तथा देवनागरी लिपि के माध्यम से लिखी जाने वाली भाषा है। यह उत्तर भारत के हरियाणा राज्य और दिल्ली क्षेत्र में बोली जाने वाली एक प्रमुख इंडो-आर्यन भाषा है, जिसका विकास संस्कृत से पाली, प्राकृत और शौरसेनी अपभ्रंश के माध्यम से हुआ। यह पश्चिमी हिंदी समूह की उपभाषा मानी जाती है और इसमें ब्रज, राजस्थानी व पंजाबी प्रभाव भी विद्यमान हैं; जिसकी बांगरू, कौरवी, खड़ी बोली और अहीरवाटी आदि अनेक बोलियाँ हैं। मध्यकाल में संत कवियों और लोकगीतों ने इसे जनभाषा के रूप में प्रतिष्ठा दी। आधुनिक काल में हरियाणवी फिल्मों, रागनियों और सोशल मीडिया ने इसकी लोकप्रियता बढ़ाई है।

हरियाणा में आधुनिक साहित्यिक परंपरा का आरंभ हर्षवर्धनकाल से माना जाता है। इस काल में अनेक ब्राह्मण ग्रंथ और वेदों के स्पष्टीकरण हेतु धर्मसूत्र, उपनिषद, मनुस्मृति, महाभारत आदि की रचना की गई। इसके अतिरिक्त अनेक काव्य धाराएं यथा जैन काव्यधारा, संत काव्यधारा, सूफी काव्यधारा, वैष्णव भक्ति काव्यधारा आदि प्रवाहित हुई। हर्षवर्धन के राजकवि बाणभट्ट ने 'हर्षचरित, कादम्बरी, चण्डीशतक, पार्वतीपरिणय नाटक, मुकुटताडितक' आदि रचनाएं लिखीं। इनकी साहित्यिक विशेषताओं के कारण कहा जाता है कि 'बाणोच्छिष्टं जगतसर्वम्'। संत सूरदास का नाम भारतीय साहित्य में आदर से लिया जाता है। इनके प्रसिद्ध ग्रंथ, 'सूर सागर, साहित्य लहरी, सूरसारावली' हैं।

संत गरीबदास का जन्म रोहतक के छुडानी नामक गांव में वर्ष 1717 में हुआ। इनकी रचना का नाम रत्नसागर है। इसके 79 अंग है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार जैनमत के प्रसिद्ध कवि पुष्पदंत का रचनाकाल संवत 1029 के आसपास रहा है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री इनका सम्बंध रोहतक जिले के किसी गांव से मानते हैं। बीरबल को अकबर के नौ रत्नों में प्रमुख माना जाता है। इन्होंने ब्रज भाषा में काव्य सृजन किया। इनका काव्य संग्रह भरतपुर में उपलब्ध है। 'सुदामा चरित्र' नामक कृति भी इनके द्वारा रचित मानी गई है।

हरियाणा के साहित्य में विशेष योगदान देने वाले साहित्यकारों में अलीबख्श का नाम आदर से लिया जाता

है। इनके सांग हरियाणा, मेरठ और मेवात के इलाकों में मंचित हुए हैं। बाबू बालमुकुंद गुप्त के द्वारा लिखे गए 'शिव शंभू के चिट्ठे' तथा 'चिट्ठे और खत' नामक कॉलमों में प्रकाशित होने वाले व्यंग्य लेखों के कारण उनकी विशेष ख्याति हुई थी, जिनके चुनिंदा लेखों का संकलन 'गुप्त निबंधावली' नाम से प्रकाशित हुआ। दिवेदी युग के विशिष्ट निबंधकारों में पंडित माधव प्रसाद मिश्र की गणना होती है, जिन्होंने लगभग 100 निबंध लिखे। देवी शंकर प्रभाकर ने हरियाणवी संस्कृति और लोक साहित्य का शोध कार्य निष्ठा से किया। इनकी 'हरियाणा के लोकगीत', 'हरियाणा सांस्कृतिक अध्ययन', 'हरियाणा लोक गीतों की धरती', 'हरियाणा की लोककथाएं', 'हरियाणा लोकनाट्य' और 'खडग पुत्र' आदि रचनाएं प्रमुख हैं।

नाट्य विधा का एक स्थापित नाम है, स्वदेश दीपक, जिन्होंने कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में भी विशेष पहचान बनाई। इन्हें हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा सुर पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। पंडित लखमी चंद एक प्रसिद्ध कवि और लोक कलाकार थे, जिन्होंने बीस से अधिक सांगों की रचना की। इनमें नौटंकी, शाही लकड़हारा, राजा भोज, चंद्रकिरण, हीर-रांझा, चाप सिंह, नल-दमयंती, सत्यवान सावित्री, मीराबाई, पद्मावत प्रमुख हैं। हरियाणा के स्मरणीय हिन्दी साहित्यकारों में चंदबरदाई, उधो दास, बाबा फरीद, अहमद बख़्श थानेसरी, दयाबाई, दाग देहलवी, माईराम कवि रत्न, भदंतानंद कौशलायन, श्रीराम शर्मा, दौलतराम ओमानंद सरस्वती, विष्णु प्रभाकर, राजा राम शास्त्री, बैजनाथ सिंघल, लाला देशबंधु गुप्त और हरियाणवी साहित्यकारों में पं. मांगे राम, बाजे भगत, मेहर सिंह, धनपत, रामकिशन व्यास, निहाल चंद 'निहाल', पं. रामसरूप सिटावली, दयाचंद मायना आदि का नाम भी उल्लेखनीय है। भारत वर्ष हरियाणा के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक योगदान से साथ-साथ उसके बहूमूल्य साहित्यिक योगदान पर भी गर्व की अनुभूति कर सकता है।

बन्दे भूल्या भजन राम का, विरथा जन्म गँवाया क्यूँ

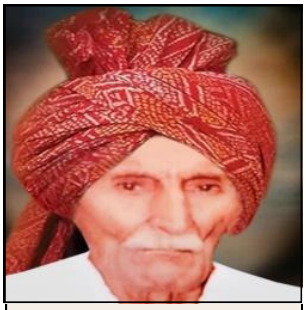

स्वर्गीय निहाल चंद 'निहाल'

बन्दे भूल्या भजन राम का, विरथा जन्म गँवाया क्यूँ।

मतना शाह तै आँख चुरावै, फेर तनै कौड़ी भी ना थ्यावै
नोटिस जगत सेठ का आवै, नाटग्या पूँजी ल्याया क्यूँ।

जब ऊपर नै पैर तेरे थे, चौगरदै मल-मूत्र फिरे थे
तनै ओदर मैं वचन भरे थे, झूठा हलफ उठाया क्यूँ।

सदा उम्र ना जरूर मरैगा, जब आवैंगे यमदूत डरैगा
दण्ड तेरे बदले कौण भरैगा, जाण कै पाप कमाया क्यूँ।

कहैं निहालचन्द छन्द हँस कै, नाँगल ठाकरान मैं बस कै
बैठ्या मोह-माया मैं फँस कै, भूल का कोट चिणाया क्यूँ।

(लोककवि निहाल चंद 'निहाल' की गणना सामयिक महान सांगियों में होती है, सांग क्षेत्र में इनका ऐतिहासिक योगदान महनीय है। इन्होंने हरिश्चंद्र, राजा उत्तानपाद, नल-दमयंती, सत्यवान-सावित्री, भगत पूर्णमल, चाप सिंह, रामलीला, कृष्णलीला, महाभारत, राजाभोज-शरणदे, सरवर-नीर, चंदकिरण, ज्यानी चोर, जमाल-गबरू, गोपीचंद तथा वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप आदि सांगों और अनेक मुक्तक भजनों की रचना की। उनके काव्य में भारतीय संस्कृति के उदात्त जीवन मूल्य, अध्यात्म, गुरुभक्ति, समाज-सुधार, नीति, नारी-सम्मान, देशभक्ति, युगबोध का चित्रण उल्लेखनीय है।)

कित टोहूं

(क से ह तक वर्णक्रमानुसार)

डॉ. रामफल चहल
साहित्यकार, लोकसंस्कृति साधक, रंगकर्मी और हरियाणा साहित्य अकादमी से सम्मानित, हरियाणवी भाषा, साहित्य और लोक संस्कृति के गहन अध्येता और पथ-प्रदर्शक

कच्चा ढूण्ढ, काला भूण्ड
खेत का डरावा, झूठ बोल कै यावा
गोफिया अर टाट, चाक्की के पाट
घेर की बाअड़, फेहली की आअड़
डोवटी का पाट, जेली आला जाट
चरखे का ताकू, चिलम अर तम्बाकू
छांत म्हं मोघ, हल का ओघ
जच्चा की चाब, बेटी कै बाप पै आब
झाड़ी का भींटका, अचार टींट का
ज्यां कतंइयां बिन लीडर, पूरे पाणी का फीडर
तांगे की सवारी, मतलब बिन यारी
थाम का मकान, देसी का पकवान
दाम्मण का नाड़ा, कुश्ती का अखाड़ा
धनुष अर बाण, सांगरी का ल्आण
नेता की साच्ची बाणी, रहट का पाणी
पइंयां का खेल, कोयले की रेल
फूफा कुहाणा कसार, अर मथाणा सा यार कित टोहूं ...

कित टोहूं
बणी म्हं झण्ड, चूने का गरण्ड
भाभी की बन्दनवार, लापसी आला त्यूहार
मामा का बेलवा, होक्के का टेरूआ
यारी म्हं काम आवणिया, सर पै खेई ठावणिया
रई और चाखड़, धाणी अर अंगाकड़ा
लोबां की हूक, अर कोयल की कूक
वेद का पढ़ावणिया, खिचड़ी गोज्जी खावणियां
सिण्डोरी अर पीहल, खारे आंगी की तील
हल और बहल, रामफल सा चहल कित टोहूं।

लंदन अर सिडनी मै छारया धोती कुड़ता दामण

दिनेश शर्मा 'दिनेश'
फल्गु लोककला महोत्सव के संस्थापक, शिक्षाविद, साहित्यकार, हरियाणवी बोली, लोक साहित्य और संस्कृति के संवाहक
dineshpharal@gmail.co

बदलाव संसार का नियम सै, या बात आपनै जरूर सुणी होगी। आज के बख्त की बात करां तै या बात जमा साच होरी सै। बदलदे बख्त गेल सारी दुनिया का रंग-ढंग बी बदल्या। इब तै सारी धरती का एक देस बरगा ए काम होरया सै। इस्सा लागै जणूं धरती छोट्टी होगी च न्यू कहल्यो अक सारी धरती एक कुणबे ज्यूं दिखै सै। आप देखदे होंगे आजकाल सारे हरयाणा तै बालक-बच्चे पढ़ाई खातर अर जवान काम-धंधे की टोह मै दुनिया भर के देसां मै जाण लागरे सैं। पर या बात कति नई बी ना सै। पराणे टेम तै ए पढ़णिए अर काम करणिए विदेस मै जांदे रहे सैं। बस इसे सारी उठापटक के चक्कर मै घणखरे विदेस के ए होकै रह जे सैं। पर इसका यूं मतलब कतई नहीं सै के उनके आपणा देस-परदेस याद ए कोन आंदा।

बड़े-सयाणे न्यू कहया करैं अक मां-माटी का असर माणस पर तै जीते जी जाया ना करदा। आपनै देख्या होगा हर साल जनवरी के मीहने की 9 तारिख नै परवासी भारतीय दिवस मनाया जावै सै। इस दन परवासी लोग कट्ठे होकै अपणे देस-धरती की बात करैं सैं। मातरभूमि पै माथा टेक कै अपणे ऊपर उसका स्यान मानैं सैं। दुनियाभर के देसां मै रहण आले हरयाणवी सदा आपणे संस्कार अर संस्करती तै सदा जुड़े रहैं सैं। इन परवासी हरियाणवियाँ नै देखयाँ पाच्छै हाम्नै इस बात की बी तसल्ली हो ज्या सै अक परवासी बी आपणे देस-परदेस नै उतना ए प्यार करैं सैं जितना हाम्म अर आप। दुनिया भर मै अमेरीका, इंग्लैण्ड, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, जर्मनी, इटली, मारीशस, फिजी, सिंगापुर, चीन, कनाडा, जापान अर यू.ए.ई. किते बी रहण आल्ले हरियाणवी हों सदा आपणे संस्कारां तै जिंदगी जीते पावैं सैं।

कई देसां मै तो हरयाणवी लोगां के आपणे समूह बणरे सैं। जिस तरियाँ हरियाणा एसोसिएशन यू.के., एसोसिएशन ऑफ हरियाणवीज इन ऑस्ट्रेलिया अर हरियाणा एसोसिएशन यू.एस.ए.। आड़ै एक बात का जिकर करणा जरूर चाहूंगा अक आज तकनीक के जमाने मै परवासी हरयाणवी मोबाइल के गेल एक-दूसरे तै सम्पर्क बणा कै राखैं सैं। विदेस मै बी एक-दूसरे के दुख-सुख मैं सामिल होवैं सैं अर भाईचारा बणा कै राख्खै सैं। इंग्लैण्ड, अमेरीका, यू.ए.ई. जिसे देसां मैं ये समूह बड़े-बड़े कारयकरम करकै तीज-त्योहार खूब धूम-धल्ले तै मनावै सैं। 40 साल तै ज्यादा बख्त तै इंग्लैण्ड मै रहणिए दुनिया भर मै परसिद् हिन्दी के मंच संचालक रवि शर्मा आज बी गजब की हरयाणवी बोलैं सैं। फरीदाबाद के बड्ड़े लेखक तेजेन्द्र शर्मा नै तो हिन्दी साहित्य मै बढ़िया काम करण करकै बिट्रेन की महारानी पै तै ब्रिटेन का तीसरा बड़ा सम्मान एम बी ई (आनरेरी मेम्बर ऑफ़ दि ऑर्डर ऑफ द ब्रिटिश एम्पायर) मिल्या सै। रोहतक की ललिता शर्मा पाछले 20 सालां तै यू.ए.ई. मैं पढ़ावैं सैं। उन्नै ओड़ै रहणिए हरियाणवियां का एक समूह बी बणा राख्या सै। इसे तरियां पंचकूला मै जाम्मी सुरीति मारीशस मै पढ़ाण के गेल हरियाणवी संस्करती तै जुड़े कारयकरम बी ओड़ै के रेडियो पै करदी रहै सै। आस्ट्रेलिया मै रहणिए सेवा सिंह रेढ़ू सोनीपत अर रोहतक के कई छोरया गेल मिलकै हरयाणा दिवस, होली, दवाली मनाण खातर हरयाणवी गाणे-बजाणे के कारयकरम करवावैं सैं। थोड़े दिन पहल्या ए ऑस्ट्रेलिया मै गीता महोत्सव की भी धूम रही। रेवाड़ी मै जाम्मी रेखा राजवंशी

आस्ट्रेलिया मै अर रोहतक की इंदु नांदल जर्मनी मै हिन्दी भाषा मै लेखण कर री सैं। इटली मै रहणिया रोहतक का श्रीदत्त हरयाणवी कपड़े-लत्यां मै सरकस करै सै। कनाडा मै प्रवीण दलाल अर अमेरिका मै अनिल राठी 'हरित' नै हरियाणवी संस्करती का झंडा कति ऊंचा राख्या सै।

इस्से तरियाँ कैथल, कुरुक्षेत्र, अंबाला, करनाल, जींद, पानीपत, सोनीपत अर यमुनानगर जिल्यां तै घणे ए हरयाणवी दूसरे देसां मै अपणे करतबां तै नाम कमाकै आपणा लोहा मनवा रे सैं। जद लंदन, सिडनी, दुबई किते बी दुनिया भर मै हरयाणवी बोली जावै सै अक हरयाणवी नाच-गाणा होवै सै तै किसे बी हरियाणवी की छाती गरव गेल भरणा अर माथा ऊपर नै उठणा आम बात सै। असली बात तै या सै...

लंदन अर सिडनी मै देख्या
जिब धोती कुड़ता दामण
मन मै मेरे भरया हुमाया
जणूँ आग्या हो सामण

Prayag Shukla

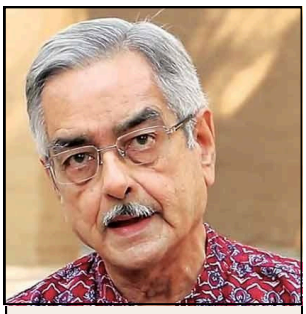

Prayag Shukla

Poet, art critic and fiction writer Prayag Shukla (1940, Kolkata) has been writing on arts for the last five and half decades in Hindi and English. He was invited to an international writing programme in Iowa (USA) in 1984. He is the recipient of the Raza Fellowship (2016) for his book on the biography of the Indian artist, poet and writer, J Swaminathan.

Prayag Shukla has published nine poetry books, five collections of short stories, three novels, a book on art appreciation, Dekhna, and a book on Satyajit Ray, Ek Filmkaar kee Oonchai. He has edited Drawing-93, Drawing-94, Rang Tendulkar (on Marathi playwright Vijay Tendulkar), Kavita Nadee (a book of poetry on rivers), he has enchanted young and old alike. His collection of 20 poems, Here Comes the Camel, brings the joy of his writing to a new set of readers - bright imagery, sound effects, and clear often rhyming words - make these a perfect introduction to poetry for the young.

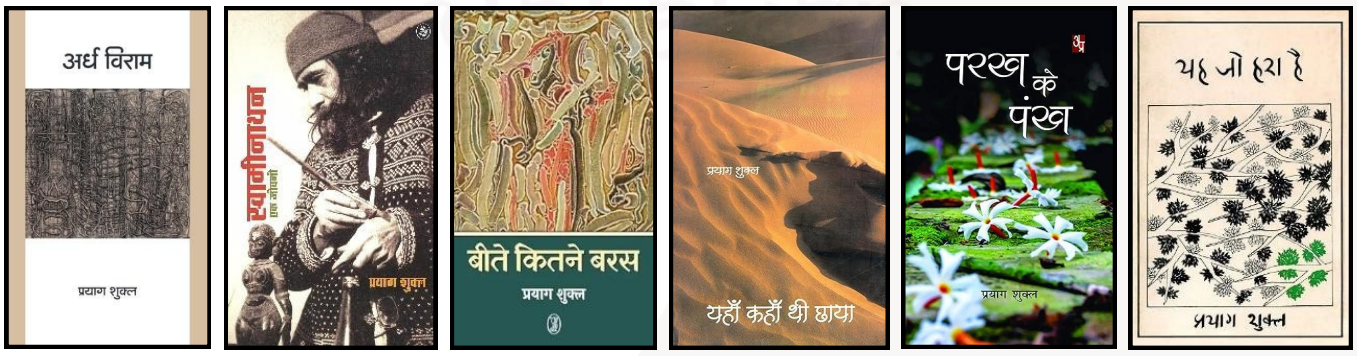

On Mullingar Hill

Dr. Tania Saili Bakshi
Programme Director of Valley of Words, Arts and Literature Festival, and Consultant Editor for Newspost Uttarakhand's only bilingual news web-portal
tania_saili@hotmail.com

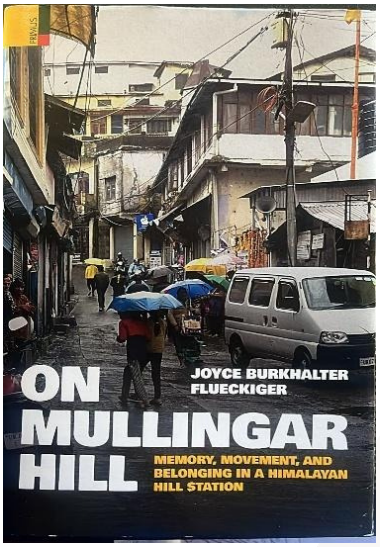

Written by Joyce Burkhalter Flueckiger, On Mullingar Hill, in the interview format, stretches from the edge of Mullingar and makes it way down to Clock Tower-Mussoorie, recounting personal narratives of twenty-odd families who live in this narrow stretch. Over 311 pages, the author takes the reader by the hand - from shop to store; one home to another - the book peels back layers of their lives and the place they call home.

From Northern Stores the book ends at Vinod Kumar and Surbhi Agarwal - Vinod's Art & Antiques and Mussoorie Heritage Centre. Joyce writes with passion about families who have over generations made Landour Bazaar their home.

In Mansa Ram Cricket lives Mohmmad Tahir and Gulam Nabi, who are bakers from Ghoghas in Tehri Garhwal. 'So, in 1947, when there was some unrest between Hindus and Muslims, and some people from Pakistan came to India, and some from India went to Pakistan - in the time of my dada, there was this Charles Bakery, where my father used to work,' says Mohmmad Tahir. 'The Raja of Tehri brought us here. Our family members used to make glass bangles (churis). We used to decorate the top of the glass (he shows indented lines in the glass, painted gold). If we hadn't stopped that profession, we would all own bangle factories now but our ancestors left bangle-making.'

Joyce takes the reader back to her days at the nearby school, where Tahir's father would be found sitting outside the gates selling 'tuck', a small shop selling candies and packaged snacks to students. Opening a battered tin trunk that he carried on his back revealed a wide array of pastries and candies. His speciality was macaroons and home-made

toffees. Tahir repeated a litany that maps households across the hillside with a tin trunk carried on his head. His list created a geographic and social network between the British-era houses - Ellengown, Bothwell Bank, Fairview, Firs Cottage, Pennington, South Hill, and so many others.

On the narrow road, above Mansaram Cricket, is another small shoemaker shop, owned by father and son duo, Sonu Ram Bhatia and his son Ranveer who for years have cobbled and sold hand-crafted sandals to hordes of tourists descending up Landour. Ranveer's great-grandfather came to these hills from Mandi in nearby Himachal Pradesh. Though they live in nearby Jaunpur, at home the family still speaks a dialect of Himachali. Will they go to Himachal? For Sonu and Ranveer, the point of no return was crossed a long time ago.
'There is no one there now. Our uncle also passed away. His family is there, and we have left everything to them, we are not going to take these things with us. One day, we will leave everything behind.'

Around the bend, you will find Jaswinder Singh, or 'Smarty Singh' (as the entire bazaar calls him). You will find him directing traffic on the steep hill, helping tourists and taxi drivers from the plains negotiate the incline opposite his shop. Originally, his family came here from the hills, across the border, and after the initial struggle, settled down in these hills. What keeps him here? 'People here – Muslims, Hindus, Sikhs, all live in harmony. They all come to each other's affairs - festivals, weddings and funerals.' He says, 'If I am not feeling well, they will come and ask, 'What happened? Is everything alright? Why didn't you open the shop yesterday? If I am in hospital, they will drop in to see me. You don't have this gesture in Delhi, in metropolitan cities; not even in Dehradun, this happens only in Mussoorie. If someone dies, the whole bazaar is closed; everyone gathers to pay their condolences for the family, and they go with the dead body as it is carried down the hill until it is taken for cremation on a vehicle.'

On Mullingar Hill is a labour of love for Landour Bazaar - home to everyone who at some point of time was an 'outsider.' This excellent piece of research could well be your personal guide as you make your way up the narrow lane of good old Landour Bazaar!

A Tribute to Mahakavi Subramania Bharati

Dr. Ragasudha Vinjamuri
Associate Lecturer at University of Sunderland-London and Founder of Sanskruti Centre for Cultural Excellence
ragas_v@yahoo.co.in

"Awake, my fellow Indians! The dawn of freedom has arrived."

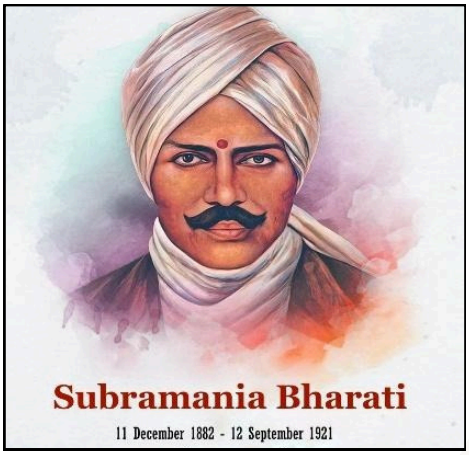

Poet, Patriot, Visionary and a Multi-faceted Personality, Subramania Bharati (11 December 1882 - 11 September 1921), affectionately called as Mahakavi Bharati, was one of India's most revered poets, freedom fighters, and visionary social reformers. He was a fiery journalist celebrated not only for his literary brilliance but also for his pioneering role in the Indian independence movement and his advocacy for national unity, social justice, oneness of literature and national consciousness with his power of words, leading to a new spirit of freedom. He was one of the earliest champions of women's rights and spoke against child marriage, caste discrimination, and religious intolerance.

Subramania Bharati's life was unfortunately brief, but his impact was immeasurable. His works remain a timeless blend of art, activism and universal human values. He was born to proud parents Chinnaswamy Iyer (a court official) and Lakshmi Ammal, on 11 December 1882 in Ettayapuram (Tamil Nadu). A child prodigy, he showed extraordinary talent in poetry and languages from a very young age. He was given the title 'Bharati' (meaning 'blessed by Saraswati, the goddess of learning') at the tender age of 11 for his poetic genius. He was educated in Tamil and Sanskrit and later became fluent in English, Hindi, and other Indian languages.

Bharati's journalism and poetry became vehicles for patriotic fervour and political awakening. His writings inspired people to rise against British rule, making him one of the earliest nationalist voices in South India. He was associated with prominent leaders such as Bal literature

and national consciousness with his power of words, leading to a new spirit of freedom. He was one of the earliest champions of women's rights and spoke against child marriage, caste discrimination, and religious intolerance.

Subramania Bharati's life was unfortunately brief, but his impact was immeasurable. His works remain a timeless blend of art, activism and universal human values. He was born to proud parents Chinnaswamy Iyer (a court official) and Lakshmi Ammal, on 11 December 1882 in Ettayapuram (Tamil Nadu). A child prodigy, he showed extraordinary talent in poetry and languages from a very young age. He was given the title 'Bharati' (meaning 'blessed by Saraswati, the goddess of learning') at the tender age of 11 for his poetic genius. He was educated in Tamil and Sanskrit and later became fluent in English, Hindi, and other Indian languages.

Bharati's journalism and poetry became vehicles for patriotic fervour and political awakening. His writings inspired people to rise against British rule, making him one of the earliest nationalist voices in South India. He was associated with prominent leaders such as Bal Gangadhar Tilak, Aurobindo Ghose, and Lala Lajpat Rai. He worked with nationalist publications such as Swadesamitran, India, and Vijaya. He never surrendered his ideals and spent ten years in exile in Pondicherry/present-day Puducherry (then under French rule) to escape British persecution due to his revolutionary writings. He authored many of his most influential works during this period.
Bharati was one of the earliest male feminists in India calling for women's education and equal rights, who said, "If women are not free, then the nation cannot claim to be free." His poetry blends huge love for India, advocacy for women's rights, social change, abolition of discrimination and education for all. He envisioned India that was free and self-reliant, where women stood shoulder to shoulder with men, India that was free from hierarchies and social oppression, and proud of its cultural roots yet open to global progress. Some of his influential works are:

- Sudesa Geethangal (Songs of the Motherland) patriotic songs stirring courage and nationalist sentiment
- Panchali Sabatham (The Vow of Draupadi) a powerful allegory of

- India's struggle for justice and freedom
- Kuyil Pāttu (The Song of the Cuckoo) a lyrical celebration of nature and divine joy
- Kannan Pāttu (Songs of Krishna) spiritual poetry blending devotion and philosophy
- Gnana Ratham (Chariot of Wisdom)

Bharati's spirituality was broad and universal. Deeply rooted in Hindu philosophy, he believed in the unity of all faiths and the divinity of humanity. His poetry, with its rhythmic beauty and emotional depth, has inspired generations of singers, dancers, musicians and filmmakers. From D.K. Pattammal's stirring songs such as Aaduvome Pallu Paaduvome, M.S. Subbulakshmi's Bharata Samudayam Vaazhgave, Bharatanatyam interpretations by Rukmini Devi Arundale, Padma Subrahmanyam and Leela Samson, to cinematic renditions by Ilaiyaraaja and live performances by A.R. Rahman, his voice calling for freedom, equality, universal love and spiritual awakening continues to echo across concert halls, dance stages, and the hearts of audiences everywhere.

Bharati sadly passed away on 11 September 1921 at the age of 38. Today, he and his works stand as a symbol of courage, compassion, faith, and fearless creativity, a timeless voice that continues to guide generations and evoke cultural pride.

आपने लिखा है...

वातायनम् के दोनों अंक मेरे सामने हैं। सबसे पहले तो पत्रिका का सौन्दर्य-बोध। मंडलोई जी का चित्र और प्रवेशांक के ऊपर अंकित जालीदार झरोखा, आवरण को बहुत सम्मोहक बनाते हैं। फिर दिव्या जी की चयन दृष्टि ने आज के लेखन का एक समूचा वैश्विक परिदृश्य उपस्थित कर देने में कोई कोर कसर उठा नहीं रखी है। सब मिलाकर वातायनम् को एक सुघड़, पठनीय और वैश्विक समरसता की छबि प्रदान करते हैं। आप और आपकी टीम के लिये बधाई और शुभेच्छाओ के साथ,
सूर्यबाला

Thank you for giving me the honour of being your Chief Guest and making me your Patron- I'm not sure I deserve all this. It was a truly uplifting event, and I wish you every success with this wonderful new venture. Thank you for magazine.
With warm regards and best wishes!
Baroness Usha Parashar, CBE

दिव्याजी और उनकी पूरी सम्पादकीय मंडली को वातायनम् के प्रकाशन पर हार्दिक बधाई! विदेश में निवास करने के कारण मुझ से अक्सर हिंदी की तात्कालिक प्रकाशित महत्वपूर्ण रचनाएं छूट जाती हैं। आपका मंडल अगर हिंदी का चुना हुआ साहित्य इसी तरह छान और संजो कर परोसता रहे तो मेरे जैसे कई साहित्य के विद्यार्थी धन्य होंगे। अभी तो मन ही प्रसन्न हुआ है। जब हर एक रचना अपनी उत्कृष्टता के कारण इस पत्रिका में स्थान पाएगी, तब इसकी महत्ता का कारण - हिंदी साहित्य के वैश्विक कैनवास के केंद्र में होगा और वातायन संस्था धन्य होगी!!
इस ध्येय के लिए अनंत मंगलकामनाएं!
मीरा मिश्र कौशिक (ओ. बी. ई.)

वातायनम् अपने आप में एक अप्रतिम पत्रिका है। अपने शैशव में ही यह उत्कृष्टता के प्रतिमानों को छू रही है, अतः इसका भविष्य उज्ज्वल है।
हिंदी साहित्य, आँचलिक एवं वैश्विक साहित्य संबंधित आलेख इसके सर्वसमावेशी वैश्विक स्वरूप को सूचित करते हैं।
डा. स्वर्णा अनिल का आलेख हिंदी के विषय में बहुमूल्य जानकारी देता है। सुशील जी का आलेख अच्छा साहित्य क्या है? सभी रचनाकारों विशेष रूप से नवोदितों के लिए मार्गदर्शक है।
रसोईए कहानी युद्ध की विभीषिका को दर्शाने के साथ ही इस सत्य को प्रतिपादित करती है कि भूख के सम्मुख शत्रु मित्र का भेद मिट जाता है।
सभी वर्गों की रुचि और आवश्यकता के अनुरूप अनेक फीचर और स्थायी स्तंभों से युक्त, बहुवर्णी सुंदर चित्रों से सज्जित यह पत्रिका केवल पठनीय ही नहीं, संग्रहणीय भी है।
डॉ इला घोष

वातायनम् पत्रिका एक स्तरीय पत्रिका की पराकाष्ठा है। एक उत्तम पत्रिका जहां केवल उच्चकोटी के साहित्य का विस्तार है।
वातायनम् की लघुकथाएं
इंजेक्शन एवं विदेशी भैया दोनों ही शानदार है।
अश्विनी केगांवकर, नीदरलैंड

As a small tribute to celebrate your magazine, I have made a poetry film of my poem Dumah and acknowledged Vatayan in the credits. You are most welcome to share it with your readers and supporters.
I hope the Vatayan Parivar enjoys it.
Yogesh Patel, MBE, Editor of Word Masala and publisher of Skylark

सॉफ्ट कलर में बेहद खूबसूरत मुख्य पृष्ठ है। मेरे मित्र श्रीकांत आप्टे ऐसे आर्ट के मास्टर है। कोलाज़ बहुत अच्छे बनाते है। हमें अपनी देशज भाषाओं के माधुर्य को संरक्षित करना बहुत जरूरी है। ये भाषा के विकास और हमारी प्रगति का दस्तावेज हैं। पुनः बधाई।
मधुलिका सक्सेना 'मधुआलोक'

बहुत परिपक्व पत्रिका है। संपादन सराहनीय है। रचनाओं का चयन कुशलतापूर्वक किया गया है।
पूरे सम्पादक मंडल को हार्दिक बधाई!
मनोज मोक्षेंद्र

वातायनम् पढ़ना काफ़ी रोचक रहा। पत्रिका की प्रस्तुति अत्यंत सराहनीय है। पूर्ण पत्रिका पढ़ने की उत्सुकता है।
राजनंदिनी